संस्थापित १८६७ ई.

आर्य मित्र

साप्ताहिक

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश का मुख पत्र

आजीवन शुल्क ₹ २,५००
वार्षिक शुल्क ₹ २००
(विदेश ५० डालर वार्षिक) एक प्रति ₹ ५.००

● वर्ष : १२८ ● : संयुक्तांक ४५-४६ ● ०६ एवं १६ नवम्बर, २०२३ (गुरुवार) कार्तिक शुक्लपक्ष तृतीया सम्वत् २०८० ● दयानन्दाब्द १६६ वेद व मानव सृष्टि सम्वत्:१६६०८५३१२४

महर्षि दयानन्द बलिदान विशेषांक

महर्षि दयानन्द सरस्वती पक्के ईश्वर विश्वासी व वेदों पर अडिग आस्थावान

–देवेन्द्रपाल वर्मा

महर्षि देव दयानन्द आजीवन वैदिक धर्म का प्रचार प्रसार करते रहे। वह आर्य धर्म में आत्म विचार और ब्रह्मविज्ञान को सर्वोपरि मानते थे। दूसरे मत-पन्थ वाले उनके इस विचार से सर्वदा अछूते ही रहे। आत्मज्ञान के द्वारा ही आर्यो का विश्व में उत्कर्ष हुआ, जो सोने की चिड़िया कहा जाता था। महाभारत युद्ध के पश्चात् आर्यों का पतन शुरू हुआ। जो वर्तमान में अधो दशा को प्राप्त है। भविष्य में भारत की दशा व दिशा आत्म ज्ञान से शीर्ष पर होगी। आर्यों की विवेक शक्ति सबसे बड़ी थाती है। पिछला अतीत इसका ज्वलन्त प्रमाण है। कि समस्त संसार में आर्य विश्व गुरु रहे हैं।

महर्षि की वेदों पर अडिग् आस्था व अपार भक्ति थी जो आत्म तत्व के मूल स्रोत हैं। वेद विमुख होना उन्हें कतई स्वीकार नहीं था चाहे वह प्रार्थना समाजी हो, ब्रह्म सामाजी या फिर लाहौरी ब्राह्मण। वेद विषय में स्वामी जी ने कभी भी समझौता नहीं किया। वह कुरान, बाइबल आदि का खंडन भी वेदों के आधार पर करते रहे। वेद आज्ञा और ईश्वर भक्ति स्वामी जी के धर्म के दो अंग सदैव रहे। भारत के सभी जाति के लोगों को इसके लिए आजीवन प्राण-प्रण से प्रयत्नशील रह कर समझाते रहे। समाज सुधार, समाज संस्कार के बिना संभव नहीं। पौराणिक पाखंड व कुरीतियों से लोगों को सचेत करना आसान काम नहीं था।

महर्षि पुराने आचार-विचार इतिहास व स्मृतियों व अतीत के धर्म कर्म को कभी घृणा की दृष्टि से नहीं देखते थे। उन्हें अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति की अवहेलना अंश मात्र भी सहन नहीं थी। वह उसे अपनी पैतृक थाती के रूप में मनाते थे। जो सुधार रूपी संशोधन से पुनः अपने पुराने वैभव को प्राप्त कर लेगा ऐसा उनका मानना था।

महर्षि ने खंडन रूपी खड़क से देश व जाति में फैली कुरीतियों को दूर करने का भर्सक प्रयास किया वह एक देश एक धर्म एक ईश्वर एक धर्म ग्रंथ की मान्यता के लिए सदैव कटिबद्ध रहे। ऋषिवर लिखते हैं ''यद्यपि आज कल बहुत से विद्वान प्रत्येक मत में पाए जाते हैं (परंतु यदि) वे पक्षपात छोड़कर सर्व तंत्र सिद्धांत को स्वीकार करें, जो-जो बातें सबके अनुकूल हैं और सब में सत्य है उनको ग्रहण करके और जो बातें एक दूसरे से विरुद्ध पाई जाती हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्ते-वर्त्तावें तो जगत का पूर्ण हित हो जाएगा। विद्वानों के विरोध से ही अविद्वानों में विरोध बढ़कर विविध दुःखों की वृद्धि और सुखों की हानि होती है यह हानि स्वार्थी मनुष्यों को प्यारी है, परंतु इसने सर्व साधारण को दुःख सागर में डुबो दिया है।''

स्वामी जी ने वैदिक धर्म से इतर अन्य मत पंथों की समालोचना अपनी गहरी गवेषणा व अकाट्य तर्क व युक्तियों से की। वह १६वीं सदी के सबसे बड़े समाज संस्कारक व सुधारक थे। समस्त मानव जाति के हित के लिए उन्होंने काम किया वह चाहे बाल विवाह हो, विधवा समस्या हो, अछूतोद्धार हो, स्त्री शिक्षा हो, ब्रह्मचर्य का पालन हो या पराधीन मां भारती के लिए लाखों स्वतंत्रता सपूतों को तैयार करना हो, समाज रूपी चक्र को चलाने के लिए महर्षि ने अपने प्राणों को तैल रूप में न्योछावर कर दिया। ईश्वर की इच्छा तो पूर्ण हुई समस्त मानव जाति को जाते-जाते वह योगी एक दिशा दे गया।

महर्षि के १४०वें बलिदान दिवस पर हम सभी आर्य वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए उनके अधूरे सपने को पूरा करने के लिए संगठित होकर जुट जाएं यही ऋषि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि व राष्ट्र भक्ति होगी।

●●●

वेदामृतम्

गोभिष्टरेमामीत दुरेवां, यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम्।
वयं राजभिः प्रथमा धनानि, अस्माकेन वृजनेना जयेम।।

ऋ०-१०.४२-४४.१०

हे पुरुहूत इन्द्र ! हे बहुतों से पुकारे जाने वाले सम्राट् परमेश्वर ! जीवन में हमें जिन अनेक समस्याओं से उलझना पड़ता है, उन्हें सुलझाने में तुम सदा हमारे सहायक होते हो। तुम्हारी प्रेरणा हमारे सम्बल का काम करती है। अतः स्वभावतः हम तुम्हें पुकारते हैं। किन्तु तो भी हम यह नहीं चाहते कि तुम हमें पंगु बनाकर स्वयं हमारे सब कार्यों को सिद्ध कर जाओ। हमें शक्ति दो कि हम स्वयं अपनी त्रुटियों को भरें और अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करें। हमारे सम्मुख प्रमुख समस्याएँ हैं अमति, क्षुधा और निर्धनता की।

जब हमारे किन्हीं व्यक्तियों में या हमारे समाज में अमति या अविद्या घर कर लेती है, तब हम कर्तव्याकर्तव्य के विवेक को खोकर दुराचरण में प्रवृत्त हो जाते हैं और हमारा पतन होने लगता है। इस 'दुरेवा अमति' को हम वेदवाणियों के अध्ययन से, वेदों में विद्यमान मति, मेघा, और प्रज्ञा की प्रेरणाप्रद सूक्तियों से, दूर कर दें। साथ ही अमति को नष्ट करने के लिए गोदुग्ध, गोघृत आदि का भी सेवन करें। यदि हमारा समाज क्षुधा और भुखमरी से पीड़ित हो तो हम यव आदि अन्नों को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करें। वेद में औषधियों के पांच वर्ग कहे गये हैं। सोम-वर्ग, दर्भ-वर्ग, भंग-वर्ग, यव-वर्ग और सहस्-वर्ग''। यव-वर्ग में यव, ब्रीहि, माष, तिल, मूँग, चने, प्रियंगु, अणु, श्यामाक, नीवार, गेहूँ, मसूर आदि सब अन्न आ जाते हैं। इनकी कृषि को प्रोत्साहन देकर हम भूखों का पेट भरें। तीसरी वस्तु निर्धनता है, जिसपर हमें विजय पानी है। हमारा लक्ष्य है स्वयं को और अपने राष्ट्र को समृद्ध बनाना। हमें समृद्धिशील होने के लिए स्वयं भी उद्योग करेंगे और राजकीय सहायता भी लेंगे। हे इन्द्र ! हमें बल दो कि हम 'प्रथम' बनें, श्रेष्ठ बनें, और अमति, क्षुधा, निर्धनता आदि को अपने राष्ट्र से निर्वासित करने में समर्थ हों।

साभार-वेदमंजरी

ऋषि को अश्रुपूरित अन्तिम विदाई

–देवेन्द्र तनेजा

ऋषि दयानंद ने भयंकर विपरीत परिस्थितियों मे सत्य का मण्डन और पाखंड का खंडन किया इसलिए सभी उनके विरोधी हो गये।

उनके प्राण हरण की भयंकर चेष्टा की गई। जो उनके भरोसेमन्द थे वे सब निकम्मे निकले। २९ सितम्बर १८८३ को रात मे शाहपुरा निवासी धोड मिश्र रसोईया द्वारा दिये गये दूध को पीकर सोये। उसी रात मे उन्हें उदरशूल व वमन हुआ। फिर डाक्टर अलिमर्दान खां की चिकित्सा आरंभ हुई लेकिन रोग बढता गया। उनके इलाज से दस्त अधिक आने लगे। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह कि किसी आर्य समाज या अन्य को ऋषि की बीमारी की सूचना नहीं दी गई। बाद मे १२ अक्टूबर १८८३ को अजमेर के आर्य सभासद ने राजपूताना गजट मे रोग का समाचार पढ़ा। तब दूसरे लोगों को पता लगा।

लेकिन १५ अक्टूबर तक स्वामी जी की दशा पूर्णतः निराशाजनक हो गई। वहाँ से उन्हें आबू और फिर अन्त मे भक्तो के आग्रह करने पर उन्हें अजमेर पहुँचाया गया। अजमेर पहुँचने पर डाक्टर लछमन दास ने चिकित्सा आरम्भ की लेकिन कोई लाभ न हुआ।

२९ अक्टूबर को हालत और खराब हो गई उनके पूरे शरीर पर फफोले पड गये। जी घबराने लगा। बैठना चाहते थे लेकिन बैठा न गया। अन्त मे आखिर वह दिन आया ३० अक्टूबर सन १८८३ अमावस्या संवत १९४० मंगल वार दीपावली का दिन। दूसरा डाक्टर बुलाया गया पीर इमाम अली हकीम अजमेर से बुलाये गये। बडे डाक्टर न्यूटन साहब ने भी इलाज किया। लेकिन लाभ न हुआ। कहते है उनका मूत्र कोयले के समान काला हो गया था। स्वामी जी ने अपने आप पानी लिया हाथ धोये दातुन की और बोले हमे पलंग पर ले चलो पलंग पर थोड़ी देर बैठे फिर लेट गये।

श्वास तेज चल रही थी उसे रोककर वे ईश्वर का ध्यान करते थे। फिर लोगों ने हाल पूछा तो कहने लगे एक मास बाद आज आराम का दिन है। इस तरह चार बज गये। स्वामी जी ने आत्मानन्द से कहा हमारे पीछे आकर खड़े हो जाओ या बैठ जाओ। फिर आत्मानन्द से पूछा क्या चाहते हो? उन्होनें कहा सब यही चाहते है कि आप ठीक हो जाय।

स्वामी जी ठहर कर बोले कि यह शरीर है इसका क्या अच्छा होगा और हाथ बढाकर उसके सिर पर धरा और कहा आनन्द से रहना। फिर स्वामी जी ने काशी से आये संन्यासी गोपाल गिरि से भी पूछा। उसने भी यही उत्तर दिया। जब यह हाल अन्य बाहर अलीगढ मेरठ कानपुर आदि से आये लोगो ने देखा तो वे स्वामी जी के सामने आकर खडे हो

क्रमशः.....४ पर

देवेन्द्रपाल वर्मा
प्रधान/संरक्षक

पंकज जायसवाल
मंत्री/सम्पादक

आर्य शिवशंकर वैश्य
प्रबन्ध सम्पादक

सम्पादकीय.....

वंदनीय महर्षि दयानंद सरस्वती

ऋषिवर के महाप्रयाण का समय निकट है। वह शरीर का त्याग करते हुए परमपिता परमात्मा की आज्ञा का साक्षात 'प्रणय' रूप प्रस्तुत करते हुए भावविह्वल होकर कहते हैं। ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो। ऋषिवर कहते हैं कि गदगद होकर ईश्वर को मित्रता के लिए पुकारा। प्रायः लोग विषम दुख में रो-रो कर ईश्वर को पुकारते हैं जिसे वह सामान्य स्तर की पुकार समझते हैं। एक जिज्ञासु व ज्ञानी की स्थिति को ऋषि अपने महाप्रयाण में प्रस्तुत करते हैं महर्षि लिखते हैं कि ``स्तुति प्रार्थना व उपासना भी ईश्वर की प्रार्थना का फल है। जिसका मन संध्या ह्वन उपासना आदि में नहीं लगता हो, तो इसका सीधा अर्थ है कि उस पर ईश्वर की कृपा नहीं है, उस कृपालु परमपिता की कृपा दृष्टि तो हर पल हर क्षण हो रही है वह अभागा इससे वंचित है।''

ऋषि ने मुंशी राम से यही तो कहा था कि `तेरी शंकाओं का समाधान करने का मैंने आश्वासन दिया था।' तुम्हारे हृदय में ईश्वर के विश्वास की ज्योति जलाने की तो बात मैंने नहीं कही थी यह तो उस परमपिता परमात्मा की कृपा से ही संभव होगा।' आखिर वह दिन भी आ गया। प्रभु कृपा से मुंशी राम श्रद्धानंद बन गए। नास्तिक गुरु दत्त को भी जाते-जाते ऋषिवर प्रभु का घनघोर विश्वासी बना गए। एक बहुत बड़ी सीख हम सबको वह दे गए-कि यदि हम ईश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना में रुचि नहीं रखते तो हमसे बड़ा अभागा कोई नहीं है।

योगिराज दयानंद श्रद्धालुओं से कहा करते थे कि सारे काम को छोड़कर परम कर्म संध्या उपासना एकांत में करनी चाहिए। वह तो मस्तक के श्रृंगार (तिलक आदि) की अपेक्षा गायत्री जप को श्रेष्ठ कहते थे। उनकी दो बातें सदैव स्मरण रखने योग्य हैं- 1-आत्मा कभी परमात्मा नहीं बन सकता। 2-परमात्मा कभी आत्मा नहीं बन सकता। सर्वज्ञ को अल्पज्ञ बनाना और सर्वत्र को एकत्र बनाना वैसा ही हुआ जैसे अल्पज्ञ को सर्वज्ञ बनाना औरएकत्र को सर्वत्र समझना।

ऋषि कहते हैं वेद हमें बताता है कि ईश उपासना से शुद्धता व पवित्रता मिलती है। उपासक के जीवन के दो अंग हैं एक पात्रता और दूसरा पवित्रता, आध्यात्मिक जीवन का मूल पात्रता है और पवित्रता जीवन का फूल, वैदिक अध्यात्म वाद में पात्रता पवित्रता है और पवित्रता पात्रता है यहां यम नियमों का पालन करना आवश्यक है अन्य अवैदिक मत पंथों में सब तर सकते हैं। परंतु वैदिक धर्म में वही पार होगा, जो पवित्र है, जिसने अपने आप को पात्र बनाया। वैदिक धर्म पाप से बचने की गारंटी देता है, पाप के फल से बचने की कोई गारंटी नहीं देता, अन्य मतों की अपेक्षा वैदिक धर्म का दर्शन व मुख्य भेद यही है कि वह सृष्टि नियम व अनुशासन को मानता है। पौराणिक देवी-देवता, ह्ज़रत मोहम्मद, ईसा व साई आदि ईश्वरीय नियमों के विपरीत चमत्कार की बात करते हैं। वैदिक जीवन की नींव यम-नियम पर रखी है।

महर्षि दयानंद की महानता, तप, त्याग, योग, ब्रह्मचर्य, संयम, विद्वता, सत्य व ईश्वर की आज्ञा पालन में झलकती है। जो पातंजलि कणाद् विश्वामित्र आदि ऋषि गणों के जीवन में पाया जाता है। महर्षि आर्य अभिनय में ईश्वर से उसकी आज्ञा के विरुद्ध ना जाने की मांग करते हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर का विरोध और उसकी सृष्टि के नियम का विरोध एक ही बात है। तभी तो आचार्य धर्म देव जी ऋषिवर के संबंध में लिखते हैं--

विमल चरित्र युक्तः पाप मुक्तः प्रशस्तः सकल सुकृत
कर्ता कर्मराशावसक्तः।
दलित जन सुधारे, सर्वदा दत्तचित्तः, जयति स कमनीयो
वन्दनीयो महर्षिः।।

-सम्पादक

गतांक से आगे.....

सत्यार्थ प्रकाश

अथ त्रयोदश समुल्लास

अथ कृश्चीनमत विषयं व्याख्यास्यामः

जबूर का दूसरा भाग

काल के समाचार की पहली पुस्तक

योहन रचित सुसमाचार

(समीक्षक) क्या जो बाइबल में ईश्वर लिखा है वह इस्राएल आदि कुलों का स्वामी है वा सब संसार का? ऐसा न होता तो उन्हीं जंगलियों का साथ क्यों देता? और उन्हीं का सहाय करता था। दूसरे का नाम निशान भी नहीं लेता। इससे वह ईश्वर नहीं। और इस्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है।। १०७।।

१०८- इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं और उसके मन्दिर में रात और दिन उसकी सेवा करते हैं।

-यो० प्र० प० ७१ आ० १५ ॥

(समीक्षक) क्या यह महाबुत्परस्ती नहीं है? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है। यदि सोता है तो रात में पूजा क्योंकर करते होंगे? तथा उसकी नींद भी उड़ जाती होगी और जो रात दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति रोगी होगा।।१०८।।

१०९- और दूसरा दूत आके वेदी के निकट खड़ा हुआ जिस पास सोने की धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया।। और धूप का धुंआ पवित्र लोगों की प्रार्थनाओं के संग दूत के हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया।। और दूत ने वह धूपदानी लेके उसमें वेदी की आग भर के उसे पृथिवी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजलियाँ और भुईडोल हुए।।

- यो० प्र० प० ८। आ० ३।४।५।।

(समीक्षक) अब देखिये ! स्वर्ग तक वेदी, धूप, दीप, नैवेद्य, तुरही के शब्द होते हैं, क्या वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कम है? कुछ धूम-धाम अधिक ही है।। १०९।।

११०-पहिले दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिले हुए ओले और आग हुए और वे पृथिवी पर डाले गये और पृथिवी की एक तिहाई जल गई। - यो० प्र० प० ८। आ० ७ ॥

(समीक्षक) वाह रे ईसाइयों के भविष्यद्वक्ता! ईश्वर, ईश्वर के दूत, तुरही का शब्द और प्रलय की लीला केवल लड़कों ही का खेल दीखता है।।११०।।

१११-और पांचवें दूत ने तुरही फूंकी और मैंने एक तारे को देखा जो स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुण्ड के कूप की कुंजी उसको दी गई। और उसने अथाह कुण्ड का कूप खोला और कूप में से बड़ी भट्ठी के धुंए की नाई धुंआ उठा। और उस धुंए में से टिड्डियां पृथिवी पर निकल गई और जैसा पृथिवी के बीछुओं को अधिकार होता है तैसा उन्हें अधिकार दिया गया।।

और उनसे कहा गया कि उन मनुष्यों को जिनके माथे पर ईश्वर की छाप नहीं है। पांच मास उन्हें पीड़ा दी जाय।।

-यो० प्र० प० ९। आ० १ २ ३ ४ ५

(समीक्षक) क्या तुरही का शब्द सुनकर तारे उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्ग में गिरे होंगे? यहां तो नहीं गिरे। भला वह कूप वा टिड्डियां भी प्रलय के लिये ईश्वर ने पाली होंगी और छाप को देख बांच भी लेती होंगी कि छाप वालों को मत काटो ? यह केवल भोले मनुष्यों को डरा के ईसाई बना लेने का धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे तो तुमको टिड्डियां काटेंगी परन्तु ऐसी बातें विद्याहीन देश में चल सकती हैं आर्यावर्त्त में नहीं। क्या वह प्रलय की बात हो सकती है।। १११।।

११२- और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी।। -यो० प्र० प० ९। आ० १६ ॥

(समीक्षक) भला ! इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहां चरते और कहां रहते और कितनी लीद करते थे? और उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा? बस ऐसे स्वर्ग. ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिये हम सब आय ने तिलांजलि दे दी है। ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय तो बहुत अच्छा हो।। ११२।।

११३-और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा जो मेघ को ओढ़े था और उसके सिर पर मेघधनुष था और उसका मुंह सूर्य्य की नाई और उसके पांव आग के खम्भों के ऐसे थे। और उसने अपना दाहिना पांव समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा।। -यो० प्र० प० १०। आ० १। २।।

क्रमशः अगले अंक में...

दयानन्द शास्त्रार्थ प्रश्नोत्तर-संग्रह

मुसलमान दासी पुत्र

(मसूदा में काजी से वार्तालाप-अगस्त, १८८१)

२७ अगस्त, सन् १८८१ भाद्रपद शुक्ला को मुसलमानों की ईदुलफितर (रोजों की ईद) थी। काजी जी भी आ गये थे । २८ अगस्त को महाराज प्रातःकाल ८ बजे भ्रमण करके लोटे ही थे कि उन्होंने यवनों का झुण्ड अपने निवास स्थान की ओर आते देखा। उन्होंने चाँदमल कोठारी राज्य मसूदा को, जो उनके साथ मसूदा से आये थे, बुलाया और कहा कि देखो क्या बात है, ये लोग क्यों आ रहे हैं वे नीचे गये और यवन समुदाय के नेता से वृत्त ज्ञात करके स्वामी जी से कहा। उन्होंने कहा कि ऊपर बुलाओ। महाराज कुर्सी पर बैठ गये और वे लोग फर्श पर बैठ गये। आते हो काजी जी से निम्न प्रश्नोत्तर हुए-

काजी-आप हमें दासी-पुत्र कैसे बतलाते हैं ?

स्वामी जी - अपने कुरानशरीफ को देखो। इब्राहीम की दो स्त्रियाँ थीं एक विवाहिता सारा, दूसरी दासी हाजिरा, जिसे उन्होंने घर में डाल लिया था...अतः आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

काजी-कुरान में ऐसा नहीं लिखा ।

स्वामी जी (रामानन्द ब्रह्मचारी से कुरान की पुस्तक मंगाकर) देखिये, सूरा अनकवूत में लिखा है कि उसी साल (खुदा ने) उसे (इब्राहीम को) हाजिरा (के गर्म) से जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया।

काजी-वह दासी तो थी, परन्तु निकाह कर लिया था।

स्वामी जी-फिर भी वह वास्तव में दासी ही तो थी, फिर आपके दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है ?

इस पर काजी जी निरुत्तर हो गये और मुसलमान देखते के देखते रह गये।

(देवेन्द्रनाथ २। २७८)

ऋषि बलिदान दिवस : एक श्रद्धांजलि

आचार्य डॉ. धर्मवीर जी

वैसे तो प्रतिवर्ष दीपावली के अवसर पर ऋषि का बलिदान पर्व मनाया जाता है। बलिदान पर्व का मनाना, ऋषि के कार्यों का स्मरण करना, उन अधूरे कार्यों को पूरा करे बिना अधूरा है। ऋषि दयानन्द के कार्य अन्य समाज सुधारकों से नितान्त भिन्न हैं। सामान्यतः समाज सुधारक सन्त, संन्यासी लोग शान्ति सद्भाव की बातें करते पाये जाते हैं। उनके लिए शत्रु, मित्र सभी लोग उनकी कृपा के पात्र बने रहते हैं। ऋषि दयानन्द का कार्य इन सन्तों व समाज सुधारकों में से दो प्रकार के सन्तों के कार्य को समझने पर ज्ञात होता है। समर्थ गुरु रामदास ने अपने उपदेश से शिवाजी को देशधर्म की रक्षा के लिए तैयार किया था, तो कबीर जैसे खण्डन करने वाले सन्तों ने पाखण्ड को फैलाने वाले धर्म प्रचारकों से जनता को सावधान रहने की बात कही। इन सब से भिन्न ऋषि दयानन्द के कार्य की विशेषता है, जहां उन्होंने जन-सामान्य को जागरित करने का कार्य किया, वहीं उन्होंने राजा-रजवाड़ों को भी उनकी देश के प्रति क्या भूमिका है, उन्होंने इससे परिचित कराया।

ऋषि दयानन्द के कार्यों का विवेचन करने पर अन्य विचारकों से उनकी जो भिन्नता दृष्टिगत होती है, वह है समाज के पाखण्ड का मूल कारण समझना। कोई भी बात जैसी दिखाई देती है उतनी ही नहीं होती, उसके वैसा होने में जो मार्ग और समय लगा है, उस पर दृष्टिपात करने से उसके कारण पर प्रकाश पड़ता है। हम सामान्य रूप से धार्मिक, सामाजिक सन्दर्भों को राजनीति व सत्ता से पृथक् करके देखते हैं। वास्तव में यह ऊपर से दिखाई देता है। इसको समझने के लिए वर्तमान विचारक डा. राममनोहर लोहिया का यह कथन सटीक बैठता है, राजनीति स्वल्पकालीन धर्म है और धर्म दीर्घकालीन राजनीति है। अतः कोई मनुष्य केवल धर्म व राजनीति करके अपने को समाज से असम्पृक्त नहीं रख सकता। इस तथ्य को ऋषि दयानन्द ने भली प्रकार समझा था। ऋषि जानते थे राजनीति व धर्म अन्योन्याश्रित हैं, एक के विकृत होने पर दूसरा विकृत नहीं हो, यह सम्भव नहीं है। समाज में पाखण्ड केवल धर्म या केवल राजनीति में ही नहीं होता, पाखण्ड व्यक्ति के विचारों में भी होता है, वह जहां भी रहेगा, धर्म या राजनीति दोनों को प्रभावित करेगा।

हम अपने देश में धार्मिक पाखण्ड का अनुभव तो करते हैं, परन्तु इसका कारण राजनीति या सत्ता में हैं, इसका अनुभव नहीं कर पाते हैं। हमारे सन्तों, सुधारकों ने धार्मिक पाखण्ड के विषय में समय-समय पर जनता को जगाया, परन्तु उन्होंने सत्ता में इसका मूल देखने का यत्न नहीं किया।

ऋषि दयानन्द जिस समय इस देश में अपने कार्य क्षेत्र में अवतरित हुए उन्होंने भारत की वर्तमान दशा को देखा। उस समय इस देश में सत्ताओं के अनेक परिवर्तन हो चुके थे। हर सत्ता परिवर्तन को किसी सत्ता के हटने या किसी के आ जाने को ही हम राज्य का विषय समझते हैं। यह एक विचित्र बात है। एक सत्ता या राज्य जिस इकाई के कारण बनता है, उसका सत्ता में कोई स्थान नहीं होता, यह तभी सम्भव है जब सत्ता के कारकों का बोध जनता को हो। यह जनता के पठित या समझदार होने पर ही संभव है। सत्ता की सुरक्षा के लिए राज्य ने जनता को मूर्ख रखना आवश्यक समझा, तो जनता भी सत्ता के परिवर्तन से उदासीन होती गयी । ऋषि दयानन्द के समय जनता की जो दशा हुई, वह एक दिन का परिणाम नहीं है।

जब तक इस देश में विद्या का प्रचार-प्रसार रहा, वेदों का पठन-पाठन चलता रहा, राजा-प्रजा का सम्बन्ध सहज रहा। जब विद्या का पढ़ना-पढ़ाना छूट गया, तो विदेश तो दूर, देश में भी वेद का ज्ञान सीमित होता गया। ज्ञान की दूरी मनुष्य को परिचय से दूर कर देती है, इसी कारण जो भारत अपने ज्ञान के प्रचार-प्रसार से पूरे विश्व से जुड़ा था, वही अपने अज्ञान के चलते अपने पड़ोसियों से भी अपरिचित होता गया। उन देशों में क्या हो रहा है, वहां के इतिहास, ज्ञान व विज्ञान से भारत वंचित हो गया। भारत अपनी सीमाओं में बंधा था, अपनी परम्पराओं के साथ अपने ऐश्वर्य का उपभोग कर रहा था, परन्तु उसका ऐश्वर्य, सम्पन्नता, सुख पड़ोसियों को आकर्षित करता रहा है और इतिहास के अध्याय उन घटनाओं को अंकित करते रहे हैं।

सबसे पहले सिकन्दर ने इस देश पर आक्रमण किया और यहां की सम्पत्ति को लूटा। उसका सारा ध्यान सम्पदा के संग्रह करने तक रहा। सिकन्दर के बाद शक, हूण, सिथियन आदि अनेक राजाओं के आक्रमण इस देश पर समय-समय पर होते रहे। ये भी प्रायः लूटने वाले थे, इनमें से जो लोग यहां रह गये, वे समाज में घुलमिल गये, आज उनकी कोई अलग से पहचान नहीं बची। परन्तु इसके बाद जो आक्रमण हुए उन्होंने इस देश के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सन्दर्भों को जिस तरह से प्रभावित किया, उसको आज तक भी हम एक समस्या की भांति अनुभव करते हैं। वह एक ऐसी समस्या है जो समस्या के रूप में पूर्ण रूप से प्रभावित करती है, परन्तु समस्या का समाधान खोजने में असमर्थ है। यह इस समाज की विडम्बना है। इस देश में ज्ञान-विज्ञान का पढ़ना-पढ़ना छूटने से समाज में जो विकृतियां आईं उनकी प्रतिक्रिया में बौद्धधर्म के रूप में देश में बदलाव हुआ दिखाई देता है। आचार्य चाणक्य ने सिकन्दर का उत्तर चन्द्रगुप्त के रूप में प्रस्तुत किया था। इतिहासकार अशोक के द्वारा धर्मप्रचार को यूनान की सभ्यता संस्कृति के प्रचार-प्रसार का उत्तर मानते हैं। भारतीय समाज में बाह्य आक्रमण जो राज्य के रूप में हुए अथवा धार्मिक व सांस्कृतिक रूप में हुए उनके बचाव का प्रयत्न किया गया, परन्तु यह प्रयत्न कुछ समय के लिए सुरक्षा देने वाला होने पर भी दीर्घकाल में अब समाज के विनाश का कारण बनता दिखाई देता है।

जिन दो आक्रमणों ने इस देश को सबसे अधिक प्रभावित किया, उसमें इस्लाम का तीसरा आक्रमण था। इसका पहला आक्रमण तो बहुत पहले हो चुका था। इस्लाम का दूसरा आक्रमण ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में होता है। इस समय भारत की दुर्बलता का जो परिणाम यहां के समाज को भोगना पड़ा, वह है यह देश 'इस्लाम का राजनैतिक प्रभाव रोकने में असमर्थ रहा। यह देश राजनैतिक दृष्टि से इतना दुर्बल हो गया था कि वह अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सका। राजनैतिक सत्ता का पराभव धार्मिक सत्ता के पराभव का भी कारण बना। जब राजनैतिक सत्ता प्रजा को संरक्षण देने में असमर्थ हो गई, तब समाज ने जो प्रयत्न किये उनमें सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, खान-पान के बन्धन, जाति का विभाजन, सवर्ण, असवर्ण, छुआछूत, ऊंच-नीच आदि थे। उनका उद्देश्य विधर्मियों से समाज को बचाये रखना था। परन्तु ये सारे प्रयास अज्ञान पूर्वक भयग्रस्त समाज द्वारा रक्षात्मक परिस्थिति में किये गये थे, अतः इनके औचित्य पर पुनर्विचार का अवसर ही नहीं आया। इससे जहां इस्लाम को रोकने में सहायता मिली, वहीं ये प्रयास अपनी कठोरता के चलते इस्लाम के प्रचार-प्रसार का कारण बने। एक बार विधर्मी के हाथ का छू लेने या खा लेने से जब कोई विधर्मी होने लगा, तो इस उपाय से भी हिन्दुओं को धर्म से बहिष्कृत करने में बहुत सहायता मिली। फिर जो धर्म 'सत्ता का धर्म' था, उसका प्रचार-प्रसार होने में सुविधा भी थी ही।

भारत पर आक्रमणों के इतिहास में इस्लाम के बाद स्थायी प्रभाव वाला जो आक्रमण हुआ वह यूरोप इंग्लैण्ड का आक्रमण है। इस आक्रमण में भी सत्ता के साथ जो विचार आया वह ईसाईयत का विचार था। जैसे मुस्लिम शासकों ने इस्लाम के प्रचार-प्रसार में योगदान किया, उसी प्रकार अंग्रेजी शासन ने भी ईसाईयत के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया। दोनों मतों के प्रचार-प्रसार व धार्मिक संगठनों में अन्तर था। ईसाईयत के प्रचार-प्रसार में पब्लिक स्कूल, चिकित्सालय, प्रलोभन मुख्य हैं। आज जैसे, देवबन्द जैसे मदरसे, उर्दू, अलीगढ़ इस्लाम के प्रचार-प्रसार के कारण हैं, उसी प्रकार चर्च, पब्लिक स्कूल, अंग्रेजी, चिकित्सालय, प्रलोभन सब ईसाईयत के प्रचार-प्रसार के कारण हैं। इस्लाम और ईसाईयत के प्रचार-प्रसार का प्रभाव आज राज्य पर इतना अधिक है कि ये दोनों मत 'राज्य के मत' बन गये हैं और इनकी तुलना में हिन्दू कहलाने वालों की स्थिति दुर्बल है।

आज इस देश की विचित्र स्थिति है। चित्तौड़ के किले को देखकर एक हिन्दू गर्व करना चाहे तो एक मुसलमान की मनोदशा वाले को क्या भारतीय गौरव का अनुभव हो सकता है? महाराणा प्रताप और अकबर में ऐसा कौनसा व्यवहार है, जिससे भारतीयता गौरवान्वित हो सकती है? शिवाजी और औरंगजेब का इतिहास पढ़ने-पढ़ाने में आप किसे ठीक और किसे गलत अनुभव करेंगे? इतना ही नहीं, हिन्दू और मुसलमान को एक दूसरे को देखकर अपनी बातचीत के स्वरों को ऊंचा-नीचा करना पड़ता है। आप एक-दूसरे को देखकर अपनी टिप्पणी का स्वर धीमा कर देते हैं। इस परिस्थिति से यदि कोई नेता या धर्माचार्य इन्कार करता है, तो यह पाखण्ड ही होगा। राजसत्ता तीनों में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई किसका पक्ष लेगी। इसका व्यावहारिक पक्ष है, कमजोर का कोई साथ नहीं देता। इससे बड़ी बात है। ईसाईयत और इस्लाम केवल भारत का इस्लाम या भारत की ईसाईयत नहीं है, इस्लाम का नाम आते ही विश्व के अनेक देश इस्लाम के समर्थन में खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार ईसाईयत ही नहीं, मात्र एक ईसाई पर भी संकट आ जाता है तो वेटिकन से अमेरिका तक उसके समर्थन व सुरक्षा के लिए खड़े हो जाते हैं। इस परिस्थिति में इस परम्परागत देश के समाज के पास क्या विकल्प है?

इस परिस्थिति के सुधार के लिए जो प्रयत्न किये गये उनमें ब्रह्म समाज जैसे प्रयास हैं, जिन्होंने समन्वय का प्रयास किया। इस्लाम में सूफी सम्प्रदाय इसी प्रकार का प्रयास समझा जा सकता है। परन्तु ये सारे प्रयास मत-मतान्तरों के सत्ता पक्ष के सामने टिक नहीं सकते। अतः इनकें सुधार-प्रयासों का कोई विशेष अर्थ नहीं रहता। इन परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए ऋषि दयानन्द के कार्यों का मूल्यांकन करना उचित होगा।

ऋषि दयानन्द के कार्य का सर्वप्रथम महत्त्व है इस देश के इतिहास की मूर्खता का कारण खोजना। ऋषि दयानन्द की स्पष्ट मान्यता है कि किसी देश या समाज को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए उनके विचारों का एक होना आवश्यक है। विचारों का एक होना तब सम्भव है, जब हमारा उद्देश्य एक हो। इसके लिए देश की एक भाषा, एक धर्म, एक ईश्वर का होना आवश्यक है। जब ऐसा कहा जाता है, तो लोग कहते हैं ऐसा संभव नहीं है। है नहीं यह तो ठीक है, परन्तु हो नहीं सकता यह गलत है। इतने ईसाईयों की एक पुस्तक एक भगवान हो सकता है, इतने मुसलमानों का एक खुदा और एक कुरान हो सकता है, तो कोई और ग्रन्थ धर्मग्रन्थ क्यों नहीं हो सकता, विशेष रूप से तब जब कोई बात परस्पर रूढ़ि या बाध्यता के विपरीत प्रचार-प्रसार से की जाये।

वेद इसलिए नष्ट नहीं हुए कि कोई वेद से उत्तम पुस्तक इस धरा पर अवतरित हुई थी। बात इसके वितरीत है, वेद के पठन-पाठन से लोगों को रोका गया, इसलिए वेद समाज से दूर हो गये। वेदों का विरोध हुआ, इसलिए नहीं कि वेद में ऐसा निन्दनीय विचार दिया गया है, अपितु वेद का व्याख्यान करने वालों ने जहां वेद को पढ़ने नहीं दिया, वहीं पर उसकी व्याख्या भी मनमाने तरीके से प्रस्तुत की, जिससे घर में भी इस व्याख्या का विरोध हुआ तथा उसके स्थान पर दूसरे मत मतान्तरों का प्रादुर्भाव हुआ। जहां तक किसी मत-मतान्तर व उनके धर्मग्रन्थों को मान्य करने का प्रश्न है, उसका उत्तर है जिस प्रकार से वेद की गलत व्याख्या व उनके पठन-पाठन पर प्रतिबन्ध निन्दनीय है, उसी प्रकार जिन मत-मतान्तरों की पुस्तक में पक्षपात व पाखण्ड है, वे भी निन्दनीय हैं।

वेद मनुष्यों को विचारकर अपने विवेक से विचार को चुनने का अधिकार देता है, इसलिए वेद स्वीकार्य है। ऋषि दयानन्द ने देश के पतन के मूल कारण को खोजा ही नहीं, उसके निराकरण का उपाय भी बताया। उस उपाय का ही लाभ हुआ कि आज का हिन्दू समाज एक शताब्दी तक अपने को हिन्दू बनाये रखने में समर्थ हुआ है। आज जब हम उस उपाय को स्वीकार करने में संकोच कर रहे हैं, तब यह देश इस्लामिक या ईसाई राष्ट्र के रूप में परिवर्तित हो रहा है। देश को जीवित रहना है तो उसे अपने ज्ञान-विज्ञान को अपने विचारों में जीवित रखना होगा। ये विचार देश और समाज ही नहीं संसार के सभी लोगों को जीवित रखने में समर्थ हैं। वैदिक ज्ञान-विज्ञान के नाश से हमारा व संसार का नाश हुआ है, उस जीवन को लौटाने के लिए ही ऋषि अपने ज्ञान-विज्ञान को लौटाने की बात कह रहे हैं। उनका यही सन्देश जीवनदायी है इसको समझना स्वीकार करना सच्ची श्रद्धांजली है।

पूर्वज ऋषियों को नमन, पूर्ववर्ती
मार्ग निर्माताओं को नमन।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः
पाथिकृद्भ्यः।।

आज ऋषि दयानन्द के १४० वें बलिदान दिवस पर-

भारत भाग्य विधाता ऋषि दयानन्द

-मनमोहन कुमार आर्य

ऋषि दयानन्द जी का बलिदान १४० वर्ष पूर्व हुआ था। इस अवधि में उनके अनुयायियों एवं आर्यसमाज ने जो कार्य किये हैं उसमें अनेक सफलतायें हैं। ऋषि दयानन्द को हम इसलिये भी स्मरण करते हैं कि उन्होंने हमें असत्य का परिचय कराकर सत्य ज्ञान, सत्य सिद्धान्त व मान्यताओं सहित जीवन को श्रेष्ठ व सफल बनाने वाले कर्तव्यों व अनुष्ठानों से परिचित कराया था। एक बार उनके समय के भारत की स्थिति पर विचार कर लेना उचित होगा। प्रथम बात यह है कि ऋषि दयानन्द के कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व देश घोर अविद्या व अन्धविश्वासों से ग्रस्त था। ईश्वर व जीवात्मा के सत्यस्वरूप से वह अपरिचित हो गया था। जब ईश्वर का सत्यस्वरूप ही लोगों को पता नहीं था तो सत्य उपासना भी वह नहीं जान सकते थे। देश भर में अविद्या पर आधारित मिथ्या परम्परायें प्रचलित थीं जिनसे हमारा देश व समाज दिन प्रतिदिन निर्बल व रूग्ण हो रहा था। महर्षि दयानन्द के समय में देश अंग्रेजों का गुलाम था। इससे पूर्व यह यवनों वा मुसलमानों का गुलाम रहा। सबने इसका शोषण किया और अमानवीय अत्याचार करने के साथ धर्मान्तरण किया। इस गुलामी का कारण भी अविद्या ही मुख्य था। इस गुलामी के कारण वैदिक धर्म व संस्कृति मिट रही थी और ईसाईयत का प्रचार व प्रसार हो रहा था।

इन विपरीत परिस्थितियों में देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा करने का दायित्व ऋषि दयानन्द ने अपने ऊपर लिया और प्रथम उपाय के रूप में वेद, धर्म और संस्कृति का प्रचार आरम्भ किया। वह असत्य व मिथ्या मत एवं उनकी मान्यताओं का खण्डन करने सहित विद्या की बातों, सत्य सिद्धान्तों एवं वैदिक मान्यताओं का मण्डन करते थे। हरिद्वार के कुम्भ के मेले में भी उन्होंने पाखण्डों का खण्डन किया था और हरिद्वार में पाखण्ड खण्डिनी पताका भी फहराई थी। पौराणिक नगरी काशी में जाकर उन्होंने वहां भी पाखण्ड एवं मूर्तिपूजा आदि मिथ्या अवैदिक मान्यताओं का खण्डन किया था। इससे मिथ्या मतों के आचार्यों में खलबली मच गई थी परन्तु सभी मिथ्या मतों के आचार्यों में इतनी योग्यता नहीं थी कि वह सत्य को स्वीकार करें अथवा ऋषि दयानन्द की मान्यताओं को असत्य व वेद विरुद्ध सिद्ध करें। इसका परिणाम सन् १६ नवम्बर, १८६६ को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ के रूप में सम्मुख आया। पौराणिक आचार्यों के रूप में लगभग २७ से अधिक काशी के शीर्ष आचार्यों ने अकेले स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ किया। यह सभी आचार्य मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि के समर्थन में वेद का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके। स्वामी दयानन्द जी का प्रचार जारी रहा। वह देश के अनेक राज्यों व उनके नगरों में जाकर वेदों का प्रचार करने लगे। सर्वत्र लोग उनके शिष्य बनने लगे। शिष्यों में अधिक संख्या पठित, शिक्षित व ज्ञानी लोगों की हुआ करती थी। सन् १८७५ के अप्रैल महीने की १० तारीख को लोगों के आग्रह पर स्वामी दयानन्द जी ने मुम्बई नगरी के गिरिगांव मुहल्ले में आर्यसमाज की स्थापना की। यह आर्यसमाज काकड़वाडी नाम से प्रसिद्ध है। आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य वेद और वेदानुकूल सिद्धान्तों एवं मान्यताओं सहित वैदिक जीवन शैली का प्रचार तथा पाखण्ड एवं अन्धविश्वासों सहित मिथ्या व अवैदिक सामाजिक परम्पराओं का उन्मूलन करना था।

स्वामी दयानन्द जी मनुष्यों के भोजन पर भी ध्यान देते थे। वह शुद्ध अन्न से बने भोजन को करने के ही समर्थक थे। मांसाहार, मदिरापान, अण्डे व मछली आदि का सेवन तथा धूम्रपान आदि को वह धर्म की दृष्टि से अनुचित तथा आत्मा को दूषित करने वाला मानते थे। देश को जातिवाद से मुक्त करने का भी स्वामी जी प्रयत्न किया। उन्होंने वैदिक काल में प्रचलित वैदिक वर्णव्यवस्था, जो गुण कर्म व स्वभाव पर आधारित थी, उसके सत्यस्वरूप को देश व समाज के सामने रखा। देश के पतन का मुख्य कारण अज्ञान व अन्धविश्वास ही थे। स्वामी जी ने अज्ञानता व अशिक्षा दूर करने के लिए गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया और उस पर विस्तार से चिन्तन प्रस्तुत किया। इसी का परिणाम कालान्तर में गुरुकुल एवं दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज व स्कूलों की स्थापना के रूप में सामने आया। भारत के शिक्षा जगत में यह एक प्रकार की क्रान्ति थी। हमारे पौराणिक भाई नारी शिक्षा का विरोध करते थे। ऋषि दयानन्द ने नारी शिक्षा की वकालत की और बताया कि विवाह गुण, कर्म व स्वभाव की समानता से होता है वा होना चाहिये। अतः नारी का भी पुरुष के समान शिक्षित व विदुषी होना आवश्यक है। नारी यदि शिक्षित होगी तभी उसकी सन्तानें भी शिक्षित व संस्कारित हो सकेंगी। समाज ने ऋषि दयानन्द के इस विचार को अपनाया जिसका परिणाम हम आज देख रहे हैं कि शिक्षा जगत में नारियों की उपलब्धियां पुरुष वर्ग से अधिक देखने को मिलती है। स्वामी दयानन्द जी ने समाज सुधार का जो कार्य किया वह एकांगी न होकर सर्वांगीण था। स्वामी दयानन्द नारी को संस्कारित कर वेद विदुषी बनाना चाहते थे। बहुत सी नारियां वेद विदुषी बनीं और आज भी गुरुकुलों का संचालन कर रही हैं। इसके विपरीत पाश्चात्य सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव में विवेक के अभाव में बहुत सी नारियों ने भारतीयता की उपेक्षा कर पाश्चात्य नारी के स्वरूप को ग्रहण कर लिया जहां मनुष्य की भौतिक उन्नति तो कुछ-कुछ होती दिखाई देती हैं परन्तु आध्यात्मिक उन्नति प्रायः शून्य ही होती है जिसका परिणाम जन्म-जन्मान्तरों में दुःख के सिवा कुछ होता नहीं है। यह भी बता दें कि स्वामी दयानन्द जी और उनके अनुयायियों वा आर्यसमाज ने जन्मना जातिवाद को समाप्त करने के क्षेत्र सहित दलितोद्धार का भी महान कार्य किया है।

अज्ञान व अन्धविश्वास सहित पाखण्डों का खण्डन करते हुए स्वामी दयानन्द जी ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद, जन्मना जातिवाद, फलित ज्योतिष, मृतक श्राद्ध, अज्ञान व अविद्या के सभी कार्यों का खण्डन किया। स्वामी जी ने विद्या का प्रचार व प्रसार करने के लिये सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ऋग्वेद-यजुर्वेद का संस्कृत-हिन्दी भाष्य, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिससे देश में अविद्या का प्रभाव व प्रसार कम होकर विद्या का प्रसार न केवल भारत में अपितु विदेशों में भी हुआ। स्वामी दयानन्द जी ने अविद्या को दूर करने व सर्वत्र वैदिक मान्यताओं के अनुसार समाज व परिवार बनाने के लिये आर्यसमाज की स्थापनायें की। सर्वत्र साप्ताहिक सत्संग होने लगे जहां प्रातः यज्ञ-अग्निहोत्र, ईश्वर भक्ति के गीत व भजन तथा विद्वानों के ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप का प्रचार, समाजोत्थान व देशोत्थान की प्रेरणा, मिथ्या मान्यताओं का खण्डन एवं सत्य सिद्धान्तों का मण्डन व प्रचार होता था। ऋषि दयानन्द ने पूरे विश्व को सर्वोत्तम व श्रेष्ठतम उपासना पद्धति भी दी है या यह कह सकते हैं कि वैदिक काल में योग की रीति से जो उपासना की जाती थी, उसका उन्होंने पुनरुद्धार किया। सन्ध्या में किन मन्त्रों से व किस विधि से उपासना की जाये, इस पर न केवल चारों वेदों के चुने हुए मन्त्रों से संकलित उपासना की विधि बताई अपितु अपने सभी ग्रन्थों में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना पर व्यापक रूप से प्रकाश भी डाला।

आध्यात्म व सामाजिक जगत के उन्नयन व उत्कर्ष का ऐसा कोई कार्य व उपाय नहीं था जिसका उल्लेख स्वामी दयानन्द जी ने न किया हो व जिसको प्रचलित करने के लिए उन्होंने व उनके अनुयायियों ने कार्य न किया हो। स्वामी दयानन्द जी ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज्य प्राप्ति का उद्घोष अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में किया था। ऐसा अनुमान है कि सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के ग्यारहवें समुल्लास में अंग्रेजों का तीव्र शब्दों में विरोध ही उनकी मृत्यु के षडयन्त्र का एक कारण बना था। इसकी विस्तार से चर्चा न कर हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वह सत्यार्थ प्रकाश का आठवां समुल्लास व ग्यारहवें समुल्लास सहित आर्याभिविनय, संस्कृत वाक्य प्रबोध एवं व्यवहारभानु आदि सभी ग्रन्थों को पढ़े। हिन्दी को देश की व्यवहार व राजकाज की भाषा बनाने और गोवध बन्द करने के लिये भी ऋषि दयानन्द ने अंग्रेजों की गुलामी के दिनों में अग्रणीय भूमिका निभाई थी। जिन दिनों ऋषि दयानन्द यह कार्य कर रहे थे तब गांधी जी बच्चे थे और अन्य बड़े राजनीतिक नेताओं का जन्म भी नहीं हुआ था। देश की आजादी के क्रान्तिकारी व अहिंसक आन्दोलनों में भाग लेने वालों में आर्यसमाज के अनुयायियों की संख्या सबसे अधिक थी। अंग्रेज भी इस तथ्य से परिचित थे और इसी कारण उन्होंने पटियाला के आर्यसमाज व अन्यत्र भी आर्यसमाज के सदस्यों के उत्पीड़न के कार्य किये। स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, राम प्रसाद बिस्मिल आदि ऋषि दयानन्द के समर्पित अनुयायी थे। देश से स्त्री व पुरुषों की अशिक्षा को दूर कर शिक्षा का प्रचार व प्रसार करने में आर्यसमाज की अग्रणीय एवं प्रमुख भूमिका रही है। स्वधर्म एवं स्वसंस्कृति का बोध एवं प्रचार में भी आर्यसमाज का योगदान प्रमुख एवं सर्वाधिक है। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जहां स्वामी दयानन्द ने अपना बौद्धिक योगदान न किया हो। स्वामी दयानन्द जी वस्तुतः विश्व गुरु थे। इसके साथ ही वह भारत के निर्माता और भाग्य विधाता भी सिद्ध होते हैं।

हम ऋषि दयानन्द की महान आत्मा को आज उनके १४०वें बलिदान दिवस वा पुण्यतिथि पर अपने श्रद्धासुमन अर्पित करते हैं। आज देश के सामने अनेक चुनौतियां हैं। इन चुनौतियों को परास्त करने के लिये सभी ऋषि भक्तों को आलस्य का त्याग कर वेद प्रचार को जन-जन और घर-घर तक पहुंचाना होगा। सत्य के प्रचार में ईश्वर हमारा सहायक होगा और हमें सफलता अवश्य मिलेगी।

पृष्ठ १ का शेष.....

गये आँखो से आंसू बह रहेथे तब स्वामी जी ने उन्हें ऐसी कृपा दृष्टि से देखा कि उसको बोला या लिखना असम्भव है।

मानो ईश्वर से कह रहे हो कि हे ईश्वर मैं अपने इन बच्चो को तेरे सहारे छोडकर जा रहा हूं। और उनसे कह रहे हो उदास मत हो धीरज रखो। दो दुशाले और दो सौ रुपये भीमसेन और आत्मानन्द को देने को कहा किन्तु उन्होनें न लिए। लोंगो ने पूछा आपका चित्त कैसा है कहने लगे अच्छा है तेज व अन्धकार का भाव है। इस तरफ साढ़े पांच बज गये स्वामी जी बोले सब आर्य जनो को बुलाओ और मेरे पीछे खड़ा कर दो केवल आज्ञा की देर थी तुरंत सब आगये। तब स्वामी जी बोले चारो ओर के द्वार खोल दो छत के दोनों द्वार भी खोल दिये। फिर रामलाल पण्डे से पूछा आज कौनसा पक्ष तिथि व वार है?किसी ने कहा आज कृष्ण पक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का आदि अमावस्या, मंगल वार है। यह सुनकर कोठे की छत और दिवारो पर नजर डाली फिर वेद मन्त्र पढे, उसके बाद संस्कृत मे ईश्वर की उपासना की। फिर ईश्वर का गुणगान करके बडी प्रसन्नता से गायत्री का पाठ करने लगे ॥फिर कुछ समय तक समाधि मे रहकर आँख खोलकर बोले-"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान, ईश्वर, तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा! तैने अच्छी लीला की।

बस इतना कह स्वामी जी महाराज ने जो सीधा लेट रहे थे, स्वयं करवट ली। और एक झटके से श्वास रोककर बाहर निकाल दिया। इस तरह कलयुग का यह महामानव शरीर रुपी पिंजरा छोड़कर आर्यो को रोता बिलखता छोड़कर परलोक की यात्रा पर चल दिया ।उस समय शाम के छः बजे दिवाली का दिन ३० अक्टूबर १८८३ का समय था। बाहर पंक्तिबद्ध दीपक जलते हुये मानो इस वेद रुपी ज्ञान का प्रकाश करने वाले अस्त होते सूर्य को अन्तिम विदाई दे रहे हो।

चमकेंगे जब तक ये सूरज चांद और तारे।
हम है ऋषि दयानंद तब तक ऋणी तुम्हारे।।
ऋषिवर को कोटि - कोटि नमन।

सच्चे सनातनी दयानन्द

-डा० रूपचन्द्र 'दीपक'

आजकल 'सनातन' शब्द का आवश्यकता से अधिक व्यवहार हो रहा है। जो सत्ता 'सनातन' है, उसे चाहे जितनी बार सनातन बताया जा सकता है। जो 'सनातन' नहीं, उसे भी अपनी सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के लिए सनातन बताया जा रहा है और वह भी बार-बार। अतः यह आवश्यक हो गया है कि 'सनातन' सत्ता या सत्ताओं के स्वरूप पर विचार किया जाए।

अष्टाध्यायी के सूत्र 'सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा। (५.३.१५)' द्वारा सब कालों के अर्थ में 'सर्व' से 'दा' जुड़ता है।एक अन्य सूत्र 'सर्वस्य सोऽन्यतरस्यां दि। (५.३.६)' द्वारा 'सर्व=स' होकर 'सदा' बनता है।'सदा' से 'ट्युल' प्रत्यय और 'तुट्' भी होता है। इससे बने 'सदातन' में निपातन से 'द्' को 'न्' होकर 'सनातन' शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ है 'जो सब कालों में रहे' अथवा 'सदा रहने वाला।'

ईश्वर सनातन है, वह सब कालों में एक-सा रहता है। जीव सनातन है, यह न कभी निर्मित होता और न कभी नष्ट होता है। सत्त्व-रजत्-तमस् रूपा प्रकृति भी सनातन है, इसका रूप अवश्य बदलता है किन्तु अभाव या नाश कभी नहीं होता। चार वेद सनातन हैं ये ईश्वर द्वारा उपदिष्ट हैं, सदा से हैं और सदा रहेंगे। वैदिक धर्म सनातन है, उपदेष्टा ईश्वर और उपदिष्ट वेद के सनातन होने से।

हिन्दु-धर्म के आधुनिक प्रचारक उत्साह में वेद के साथ उपनिषद्-पुराण को, राम-हनुमान-कृष्ण को, गीता- रामायण आदि ग्रन्थों को सनातन कहते पाये जाते हैं। इसका परीक्षण करना होगा। उपनिषदों की रचना का काल अज्ञात है, किन्तु रचना-काल है अवश्य अर्थात् उपनिषद् सनातन नहीं हैं। पुराणों की रचना कलियुग में हुई है, ये व्यास-रचित कदापि नहीं हैं, व्यास-रचित हों तो भी सनातन न हुए। राम, हनुमान् और कृष्ण का कभी जन्म हुआ, समय आने पर ये दिवंगत हुए, अतः सनातन होने का प्रश्न नहीं उठता। गीता कृष्ण ने कही, व्यास ने लिखी। एक रामायण वाल्मीकि ने और दूसरी तुलसीदास ने लिखी। इस प्रकार इन सब ग्रन्थों में केवल वेद सनातन हैं।

ऋग्वेद (१.१६४.२०) का वचन है :

'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।' इसमें ईश्वर, जीव और प्रकृति को अर्थात् तीन तत्त्वों को स्पष्ट भाषा में अनादि बताया गया है। ऋषि दयानन्द ने इसी आधार पर 'त्रैतवाद' के सिद्धान्त की घोषणा की है। उनसे उनका मत पूछा गया तो उन्होंने कहा कि 'मतमस्माकं खलु वेदाः।' अर्थात् हमारा मत वेद है।

कलियुग में विद्या की साधना, ईश्वर की भक्ति, समाज की सेवा और मानव-मात्र का कल्याण करने वाले दर्जनों आचार्य, विद्वान्, भक्त और सन्त-महात्मा हुए हैं, यथा-गौतम बुद्ध, महावीर जैन, स्वामी शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, सन्त रविदास, नामदेव, सन्त कबीर, गुरु नानकदेव, चैतन्य महाप्रभु, गोस्वामी तुलसीदास, मीराबाई, एकनाथ, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि। इन सबको हिन्दु-समाज सनातनी कहता है, किन्तु इनमें से कोई भी शुद्ध वेद-मतावलम्बी नहीं हो पाया।जो शुद्ध वैदिक है, वही सनातनी है, क्योंकि ग्रन्थों में केवल 'वेद' सनातन हैं। इस प्रकार केवल ऋषि दयानन्द ही सच्चे 'सनातनी' हैं।

स्वामी शंकराचार्य (७८८-८२०) ने वेदों के त्रितत्त्व-दर्शन के स्थान पर अद्वैत-दर्शन का प्रतिपादन किया। आगे आने वाले लगभग सभी चिन्तक अद्वैत से प्रभावित रहे। रामानुजाचार्य (१०१७-११३७) विशिष्टाद्वैतवादी थे, माया को नहीं मानते थे। इन्होंने ईश्वर को निमित्तकारण एवं उपादानकारण, दोनों बताया और जीव को ईश्वर का अंश बताया। निम्बार्काचार्य (११३०-१२००) द्वैताद्वैतवादी थे, तेलुगु ब्राह्मण परिवार में जन्मे और अधिकांशतः मथुरा में रहे, राधा-कृष्ण के उपासक थे। मध्वाचार्य (११९९-१२७८) शंकर और रामानुज, दोनों के आलोचक थे, द्वैतवादी अर्थात् ईश्वर-जीव को भिन्न मानते थे। कर्नाटक में जन्मे और 'पूर्णप्रज्ञ' नाम से जाने गये। इन्होंने उदुपी में कृष्ण-मठ की स्थापना की।

गौतम बुद्ध और महावीर जैन ने ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार किया। नामदेव (१२७०-१३५०) और एकनाथ (१५३३-१५९९) निर्गुण-सगुण दोनों के मानने वाले अद्वैतवादी वैष्णव और विट्ठल के भक्त थे।सन्त रविदास (१२६७-१३३५) रामानन्दी सम्प्रदाय के भक्त थे। सन्त कबीर (१३९८-१५१८) निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, किन्तु वेदमार्गी न थे।

गुरु नानकदेव (१४६९-१५३९) ईश्वर से जुड़े व्यक्ति थे किन्तु इन्होंने वेदों के पठन-पाठन की प्रेरणा न दी। चैतन्य महाप्रभु (१४८६-१५३४) 'अचिन्त्य भेद-अभेद तत्त्व' के दर्शन को मानते थे, भजन-कीर्तन और नृत्य द्वारा उपासना करने वाले वैष्णव सम्प्रदाय के भक्त थे। इनके शिष्य इन्हें राधा और कृष्ण का संयुक्त अवतार मानते थे। गोस्वामी तुलसीदास (१४९७- १६२३) राम के भक्त और साहित्यकार थे, किन्तु इन्होंने लोगों को वेदों से विमुख किया। मीराबाई (१४९८-१५४७) कृष्ण की भक्त एवं कवयित्री थीं।

राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) को तत्कालीन मुगल सम्राट ने 'राजा' की पदवी दी थी। इन्होंने ब्राह्मसमाज की स्थापना की और सती-प्रथा एवं बाल-विवाह का विरोध किया। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-१८९१) ने कन्या की विवाह-आयु बढ़ाकर बारह वर्ष करवायी और लॉर्ड डलहौजी के समय में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, १८५६ बनवाया। ये भी वेदमार्गी न थे। रामकृष्ण परमहंस (१८३६-१८८६) काली के पुजारी थे और उनके शिष्य स्वामी विवेकानन्द (१८६३-१९०२) वेदों के प्रति आदर-भाव रखते हुए भी अद्वैतवादी और वेदों के अनुपालन से दूर थे।

इन सब महानुभावों से भिन्न ऋषि दयानन्द ने अपना सम्पूर्ण जीवन एवं दर्शन वेदों पर आधृत किया। बालकों की शिक्षा हेतु जो इक्कीस वर्षीय पाठ्यक्रम बनाया, उसका उद्देश्य उन्हें वेदों का विद्वान् बनाना है।यह पाठ्यक्रम वर्णोच्चारण शिक्षा से प्रारम्भ होकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निरुक्त, छन्दःशास्त्र, मनुस्मृति, उपनिषद्, दर्शन और ब्राह्मण-ग्रन्थ पढ़ाकर वेदों का प्रकाण्ड विद्वान् बनाने के लिए आदर्श पाठ्यक्रम है।

ऋषि दयानन्द चाहते हैं कि 'वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि (मनुस्मृति)' के अनुसार बालक चारों, तीन, दो या कम-से-कम एक वेद पढ़ने के बाद ही विवाह करे।विवाह के बाद पति-पत्नी का व्यवहार एवं दिनचर्या वेदानुकूल हो।गर्भाधान से लेकर उपनयन, विवाह और अन्त्येष्टि तक समस्त संस्कार वेद-विधानानुसार हों।उन्होंने सब वैदिक संस्कारों के लिए 'संस्कार-विधि' नामक पुस्तक लिखी है, जिसका उद्देश्य है पच्चीस वर्षों में एक वैदिक-संस्कार-युक्त पीढ़ी तैयार करके समाज को आदर्श नागरिक उपलब्ध कराना।

मनुष्य एवं समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए ऋषि दयानन्द वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था को अनिवार्य मानते हैं।वे वेद पढ़ने **का अधिकार सब वर्णों को देते हैं और वेद से ही निम्न प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।**

'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।। (यजुर्वेद :२६-२)' परमेश्वर कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अपने भृत्य एवं स्त्री और अतिशूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ाकर अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूटकर आनन्द को प्राप्त हों।

ऋग्वेद (३.३८.६) का वचन है :

'त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि। 'राजा और प्रजा के पुरुष मिलके तीन सभा अर्थात् विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा नियत करके मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।, ऋषि दयानन्द इसी के अनुसार राष्ट्र में लोकतन्त्र के लिए तीन सभाएँ चाहते हैं।

मनुस्मृति वेदानुकूल व्यवस्था देती है और मनुस्मृति (१२-१००) का वचन है :

सैनापत्यं च राज्यं च
दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च
वेदशास्त्रविदर्हति।।

इसके आधार पर ऋषि दयानन्द कहते हैं कि मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश और प्रधान या राजा, ये चार वेद-विद्या में पूर्ण होने चाहिए।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द व्यक्ति, परिवार, समाज, सेना और राष्ट्र, सब स्तरों पर सब विषयों में शुद्ध वैदिक व्यवस्था चाहते हैं।वे परोपकार को भारत तक सीमित नहीं रखते, अपितु सम्पूर्ण संसार में व्याप्त करते हैं।वे आर्यसमाज के छठे नियम में लिखते हैं कि 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।' दूसरे शब्दों में, वे सच्चे सनातनी हैं और सार्वभौमिक रूप से सच्ची सनातनी व्यवस्था चाहते हैं। निःसन्देह यही भारत एवं विश्व के लिए कल्याणतमा है।

मो०: ९८३९१८१६९०

मैं 'दयानन्द' क्या चाहता हूँ ?

-डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे

सत्य का प्रचार हो।
वेदों पर आधारित वैदिक धर्म का प्रसार हो।
हिन्दु समाज का धर्मग्रन्थ एक ही हो, वह चार वेद।
मनुष्यकृत ग्रन्थों को धर्मग्रन्थ का दर्जा न दिया जाय।
अन्तिम प्रमाण वेद हैं। अन्य ग्रन्थ परतः प्रमाण हों।
ईश्वर निराकार है। सब लोग ईश्वर को उसी स्वरूप में मानें, जानें और स्तुति करें।
जड़पूजा वेद विरुद्ध है।
ईश्वर अवतार नहीं लेता वह शास्त्र विरुद्ध है।
लोग व्यक्ति पूजा न करें।
व्यक्ति मरणधर्मा है, ईश्वर नहीं।
सबकी उपासना पद्धति एक हो।
सन्ध्या, यज्ञ और ध्यान सब करें।
योगाभ्यास सभी करें।
वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, बुद्धयांक, सामर्थ्य एवं स्वभाव पर निश्चित हो।
मानव समाज एक हो, कोई ऊँच-नीच नहीं हैं।
अस्पृश्यता कलंक है।
जात-पांत समूल नष्ट हो।
सभी को उसकी योग्यतानुसार पद प्राप्त हो जाति के आधार पर नहीं।
बालविवाह पूरी तरह से खत्म हो।
विधवा विवाह होने चाहिए।
युवा युवतियों के विवाह गुणकर्म स्वभाव पर आधारित हों।
हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो । संस्कृत, संस्कृति की भाषा हो ।
युवक-युवती आधुनिक शिक्षा ग्रहण करें।
धर्म और विज्ञान का समन्वय हो।
विदेशियों द्वारा देश फिर पादाक्रांत न हो।
पाश्चात्य संस्कृति और कट्टरपन देश में न पनपे।
राष्ट्र के युवा तन-मन से बलवान हों।
विश्व में भारतवर्ष दुबारा महान हो।

साभार-मै दयानन्द बोल रहा हूँ

सम्पूर्ण राष्ट्रवासियों को इस बहन का प्रकाश-पर्व का संदेश -

असंख्य दीयों का प्रकाश बन जो दीपावली, गोवर्धन का पर्याय बन गए

दीपावली का अर्थ दीप़आवली अर्थात् दीयों की कतार या पंक्ति दीपावली को प्रकाश का पर्व', 'रवीलों का पर्व' या 'नये अन्न का पर्व एवं 'शारदीय नव सस्येष्टि का पर्व भी कहते हैं। शरद ऋतु में कार्तिक मास की अमावस्या में मनाया जाने वाला यह पर्व अनेक अर्थों में महत्त्वपूर्ण है।

प्रकाश-पर्व क्यों है दीपावली?

दीपों के प्रज्ज्वलित होने मात्र से ही यह प्रकाश पर्व नहीं है। 'तमसो मा ज्योर्तिगमय' का यह संदेश देता है यह प्रकाश पर्व । अर्थात् हमारा मन हमारे विचार, हमारा हृदय हमारा सम्पूर्ण जीवन, हमारे आस-पास का वातावरण सम्पूर्ण वायुमण्डल, समस्त पृथ्वी एवं हमारा सम्पूर्ण राष्ट्र अंधकारमुक्त हो जाए।

'अधकार मुक्त यानी 'वातावरण का अँधेरा नष्ट करना, अपने दुर्गुणों (आचरणहीन विचार) दुर्व्यसनों (ड्रग्स आदि नशा समाज एवं राष्ट्र की श्रृंखला को तोड़ने वाले बुरे कर्म) से मुक्त करने का संकेत है, प्रकाष पर्व।

यजुर्वेद का मंत्र आदेश करता है कि हमें अपने जीवन को अंधकार से प्रकाश मार्ग पर चलने का निरंतर प्रयत्न करना चाहिए।

अपाद्यमप किल्विषमय कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वज्यं सुव।। ३५/११

बड़े ही सुन्दर शब्दों में जो मनुष्य जैसे अपामार्ग आदि ओषधियों रोगों को निवृत्त कर प्राणियों को सुखी करती है, वैसे ही मनुष्य सब दोषों व अशुभ आचरण से अलग कर शुद्ध होते हैं, अंधकार मुक्त हो जाते हैं।

स्वच्छता एवं शुचिता का प्रतीक शारदीय दीपावली

वर्षा ऋतु में जिस प्रकार सभी ओर से रोगों का आगमन हो जाता है वातावरण दूषित हो जाता है, किन्तु शरद ऋतु में वर्ष भर में एक बार हमारे घरों में लिपाई-पुताई आदि स्वच्छता का महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। 'शरद' ऋतु में होने के कारण दीपावली शारदीय पर्व है। दीप हमारे विचारों में शुचिता अर्थात् पावनता, सदाचारी बनने का संदेश देते हैं ताकि हमारे जीवन का समस्त अंधकार दूर हो जाए।

स्वीलों एवं अन्नों का पर्व है दीपावली-

इस समय 'किसानों, अन्नदाताओं का पावन घर में नये अन्नों (विशेषताः धान आदि) का प्रवेश होता है। जिससे उनमें उत्साह, उमंग एवं उल्लास का संचार हो जाता है। इस कारण 'नव सस्येष्टि का पर्व है दीपावली हमारे ऋषियों (शतपथ ग्रंथ, महर्षि दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादिभष्य-भूमिका आदि) ने दीपावली के दिन तैयार की जाने वाली यज्ञ-सामग्री में नवीन धान की खील मिश्रित कर यज्ञ करने का विधान है।

दीपावली के दीए की तरह जीवन को सजाये दीयों को प्रकाशित करना सार्थक तब होगा जब हम अपने हृदय में स्वच्छ एवं पावन विचार रूपी प्रकाशमान लड़ियों को लगाएँगे । जैसे दीपावली के शुभ आगमन पर अपने घरों के धूल, कचरे, आदि को स्वच्छ करते हैं, वैसे ही सार्थक, संयमित, संस्कारित सकारात्मकता, शालीनता एवं स्वाध्यायशीलता रूपी सजाव सामग्री से जीवन को सजाने एवं सँवारने का संदेश देती है दीपावली ऋग्वेद का हम लिए उपदेश है-

आर्या ज्योतिरग्राः। (ऋ० ७/३/१/३)

अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्य सदैव प्रकाश के अनुगामी होते हैं। किन्तु यदि हममें दुर्गुण एवं दुर्व्यसना आदि दूरित विचार हैं, तो हम अंधकार के अनुगामी हैं।

जैसे जलते दीये में सभी कीट पतंगें जलकर भस्म हो जाते हैं, इसी प्रकार हमें अपने दोष को, कमियों को एवं त्रुटियों को भी भस्म कर देना चाहिए।

गोवर्धन-विशुद्ध प्राचीन सनातन संस्कृति

गौ हमारी वैदिक, लौकिक एवं भारतीय संस्कृति का अत्यंत पावन शब्द है। वेद, ब्राह्मणग्रंथ, उपनिषद, पुराण, स्मृति, इतिहास आदि जितने भी वैदिक और आर्ष - शास्त्र हैं, सबमें गौ-जाति की महिमा का वर्णन एवं कोटि-कोटि प्रशंसा की गयी है। अब तो हम सभी अत्यंत गर्व के साथ कह सकते हैं कि गो का अब वैधानिक, सांविधानिक मान्यता भी प्राप्त हो गयी है। प्राचीनकाल में तो यह भी माना जाता था कि वह घर श्मशान के समान है, जिसमें गौ का निवास नहीं गोधन को सबसे बड़ा धन कहा है। इसलिए गो हमारी वैदिक प्राचीन भारतीय संस्कृति में माँ कहा गया है।

गोवर्धन का अर्थ है गौओं का संरक्षण एवं संवर्द्धन भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही गौ का अत्यंत मान एवं सम्मान है ।

गौ माता क्यों है?

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि गौ माँ कैसे होती है, अन्य कोई प्राणी क्यों नहीं? तो मैं अत्यंत गर्व के साथ गौ को माता कहते हुए ऋग्वेद का प्रमाण प्रस्तुत करती हूँ। वह ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है एवं सर्वमान है।

गोर्मे माता ऋषभः पिता में दिवं शर्म जगती में प्रतिष्ठाः। (ऋग्वेद)

अर्थात् गौ मेरी माता और ऋषभी मेरा पिता है। ये दोनों ही मुझे यज्ञ-कामना प्राप्ति एवं ऐहिक सुख प्रदान करें ।

क्योंकि-

माता रूद्राणां वसूनां स्वसादित्याना ममृतस्य नाभिः।।

अर्थात् गौर रूदों की माता, वसुओं की पुत्री, आदित्यों की भगिनी और अमृततुल्य दुग्ध का निवास स्थान है। इसलिए वह हमारी माँ है, पूज्य (संरक्षणीय-संवर्धनीय है) इतना ही नहीं गौ माता का गर्भकाल भी हम स्त्रियों जैसा ही होता है तथा अन्य किसी प्रावसी का नहीं।

गौ पूज्य क्यों है?

यहाँ मैं तर्क के साथ प्रमाणित करूँगी कि गौ पूज्य है अतः गौवध नहीं करना चाहिए । गौवध करना उतना ही बड़ा अपराध एवं पाप हैं जितना अपने सगे-सम्बंधियों की हत्या । यदि इसे मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाए गाँ जितना अधिक हमारे मनोभावों को समझती है, उतना अन्य कोई प्राणी नहीं। तनाव की स्थिति में गौ के पास जाकर अनुभव लिया जा सकता है ।

• गौ की शारीरिक संरचना मानव की शारीरिक संरचना में अनेक समानताएँ है।

• गाय के गोबर में २३% आक्सीजन होती है एवं इसी वायु तत्व के इसमें वातावरण को स्वच्छ रखने की क्षमता होती है एवं कीटाणुनाशक होता है, इसीलिए यह पूज्य है ।

• गाय के मक्खन में ४०% जल तत्त्व होने के कारण स्फूर्तिदायी एवं ऊर्जा देने वाला होता है।

• गाय के दूध में अग्नि तत्व एवं स्वर्ण तत्त्व है। इस कारण यह पौष्टिक बुद्धिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक भी है। इसीलिए इसे अमृत कहा गया है। इसका दही एवं छाछ भी अत्यंत गुणकारी एवं रोगनाशक है।

• गोमूत्र में अनेक जीवनोपयोगी रासयनिक तत्त्व विद्यमान होते हैं इस कारण इसे ओषधि रूप में प्रयोग करके कब्ज, कैंसर, टीद्रबीद्र एवं दमा आदि रोगों में उपयोग करते हैं।

इसलिए सामवेद में लिखा है-

'तुम अपने पति, नीच गायों को मार रही हो यानी गौ का पालन करने वाले एवं न करने वाले इसका विशेष ध्यान रखें कि गौ न मारने योग्य है, इसीलिए वेदों में गौ की महिमा ''अघ्न्या'' (न मारने योग्य) के रूप में की गयी है।

गोवर्धन का अनेकार्थी शब्द राष्ट्रवर्धन है-

गोवर्धन पूजा (अन्नकूट)

गौ एवं राष्ट्र ये तो दोनों ही वेदों के गीत संसार के स्तम्भ है। राष्ट्र के बिना तो जीवन की कल्पना ही व्यर्थ है। जैसे कोटि का अर्थ करोड़ एवं प्रकार दोनों हैं, उसी प्रकार गो का अर्थ भी ''गाय एवं राष्ट्र दोनो है अतः राष्ट्रवर्धन अर्थात् राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रसेवा, राष्ट्रभक्ति करना भी गोवर्धन पूजा है। जो भारत को अपनी माता मानने लगेगे तो राष्ट्रप्रेम एवं राष्ट्रभक्ति स्वयं जागृत हो जाएगा।

ऋग्वेद के शब्दों मे गोवर्धन

ऋग्वेद में राष्ट्र के सन्दर्भ में अत्यंत रोमांचकारी एवं हृदयंगम करने वाली वाणी है।

उपसर्प मातरं भूमिम्। (ऋ० १०/१८)

अर्थात् गौ यानी राष्ट्रवर्द्धन या संरक्षक के लिए मातृभूमि की सेवा करें। जब भारत माता के प्रति अपने कर्तृतव्यों को समझने लगेंगे तब हम सच्चे अर्थो में गोवर्धन पूजा करेंगे।

ऐसी महान तपस्वी विभूतियाँ एवं महापुरूष जो दीपावली एवं गोवर्धन के प्रतीक बन गए उन पर कुछ पंक्तिया लिखकर मैं अपनी लेखनी को पवित्र करूँगी।

सम्पूर्ण संसार के जनमानस की चेतना में बसते हैं-

ऋषियों, मुनियों, सन्तों एवं महापुरूषों की लम्बी परम्परा प्राप्त करने वाले भारत-भूमि का सौभाग्य रहा है कि मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम चन्द्र जी का नाम सम्पूर्ण जनमानस का हृदय अत्यंत श्रद्धा, भक्ति एवं आदर से लेता है। हालाँकि भगवान श्रीराम का वनवास से लौटना एव दीपावली के पर्व का आयोजन निश्चय ही विवादों में रहा है। किन्तु मेरे विचार से उनका पुनः अयोध्या सुआगमन एवं लोगों के मन मे उठते उत्साह, उल्लास एवं उमंग को देख्तो हुए तत्कालीन हमारे ऋषि-मुनियों ने निकटतम दीपावली पर्व का आयोजन उनके सुआगमन के उपलक्ष में जोड़ दिया होगा तो इसमें तो प्रसन्नता की ही बात है न। ऐसे सुयोग में किसी को विवाद का प्रश्नत नहीं बनाना चाहिए।

मर्यादापुरूषोत्तम श्री राम जेसा प्रकाशमय चरित्र आज तक धरा पर न आया-

मैं ही क्या मुझे लगता है कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति भगवान श्री राम के चरित्र को पुनः देखना चाहता होगा। क्योंकि भारत की कल्पना वेद राम एवं रामायण के बिना हो ही नहीं सकती। भारत में अयोध्या राहित अनेक स्थानों पर है ही किन्तु श्रीराम की विश्व यात्रा भारत से लेकर म,रिशस, वेस्टइंडीज, यूरोप, रूस, जापान, ईरान, इराक, सीरिया, सहित नेपाल, लाओस, थाईलैण्ड, वियतनाम, कंबोडिया, मलेशिया तथा श्रीलंका तक थी।

आश्यचर्य की बात है कि

डॉ० प्रवीण सत्येन्द्र विद्यालंकार

बैंक,क में रामायण चित्रों की विश्व में सबसे लंबी श्रृंखला हैं

थाईलैण्ड तो पूर्णरूपेण राममय है। वहाँ के सड़कों से पुलों के नाम भी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के नाम पर रखे गए हैं। वहाँ चित्रकला की कार्यशाला आयोजित की जाती हैं, ताकि लोग उनके जीवन से सीख लें। विश्व की सबसे लंबी रामाण पेंटिंग भी यहाँ पर है।

भगवान श्रीराम का प्रकाशमय तेजमय चरित्र हमें समाज एवं राष्ट्र की परिस्थितियों को सुलझाने एवं पारिवारिक सम्बन्धों को सीगालने का संदेश देता हैं उनके तेज के समान हमानें आजीवन प्रज्ज्वलित दीपों के प्रकाश भी कम है।

राष्ट्र संरक्षक, राष्ट्रनिर्माता, स्त्री सुधारक एवं पाखण्डों के नाश के दीप जला गए महर्षि दयानन्द सरस्वती-

दुनिया को अपना सर्वश्रेष्ठ दीजिये और आपके पास सर्वश्रेष्ठ लौटकर आएगा।

किसी ने सत्य ही लिखा है- ''दर्द से पैदा हृदय में छन्द होते हैं, प्रीति के तट पर सभी निर्द्वन्द्व होते हैं। युगों-युगों जब कभी कलिकाल हँसता है।

तब जाकर के 'दया' के नन्द होते हैं।

गुजरात की धरती से एक ऐसा सूर्य का प्रकाश निकला, जो समस्त संसार को अपनी ज्योति दे गया। वह ज्योति ज्ञान की राष्ट्रप्रेम की, गौरक्षा की सभी के प्रति समान दृष्टि रखने की समाज सुधार की स्त्री-रक्षा की विधवा एवं दलित उद्धारक, पाखण्ड-खण्डन की आदि-आदि मैं कहाँ तक गिनाऊँ, शब्द कम पड़ जाएँगे किन्तु उनके महान व्यक्तित्व हम पूरी तरह से न लिख सकेंगे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन को चाहे जिस पक्ष से देखें सर्वांग सुन्दर है, वे संस्कार, समायोजन, राष्ट्रभक्ति, अध्यात्म पुँज, उपकार, आदि के मंदिर थे। वे सदा-सर्वदा पूज्य हैं, प्रेरक हैं, एवं अविस्मणिय है।

ऐसे महान तपस्वी महापुरूष को षड़यंत्र रचकर एक कुटिल, कुलक्षिणी के द्वारा विषपान करा और उनके जीवन का अंत कार्तिक मास की अमावस्या दीपावली के दिन हो गया। उस दिन सम्पूर्ण भारतवासियों के लिए दुर्भाग्य का दिन था ।

दीयों के उत्सव में जन्मा जो ज्योतियों का ज्योति बन राष्ट्रउद्धारक बना और दीयों में ही लीन

शेष पृष्ठ ७ पर.....

मूर्ति पूजा का रोचक इतिहास

(शंकराचार्य और जैन साधुओं की बीच शास्त्रार्थ जिसमें शंकराचार्य विजयी और जैन साधुओं की पराजय हुई। महर्षि दयानन्द के इतिहास विषयक एक रोचक ज्ञानवर्धक उपदेश)

– डा. मुमुक्षु आर्य

एक द्रविड़ देश के ब्राह्मण काशी में आकर, यहां एक गौड़पाद पण्डित थे, उनके पास व्याकरण पूर्वक वेद पर्यन्त विद्या पढ़ी थी जिसका नाम शंकराचार्य था। वह बड़े पण्डित हुए थे, उन्होंने विचार किया कि यह बड़ा अनर्थ हुआ कि नास्तिकों का मत आर्यावर्तृत देश में फैल गया है और वेदादिक संस्कृत विद्या का प्रायः नाश ही हो गया है, अतः नास्तिक मत का खण्डन और वेदादिक सत्य संस्कृत विद्या का मण्डन होना चाहिए। वह अपने मन से ऐसा विचार करके सुधन्वा नाम का राजा था, उसके पास चले गए, क्योंकि बिना राजाओं के सहाय से यह बात नहीं हो सकेगी। वह सुधन्वा राजा भी संस्कृत में पण्डित था और जैनों के भी संस्कृत के सब ग्रन्थों को पढ़ा था। सुधन्वा जैन के मत का था, परन्तु बुद्धि और विद्या के होने से अत्यन्त विश्वास नहीं था, क्योंकि वह संस्कृत भी पढ़ा था और उसके पास जैन मत के पण्डित भी बहुत थे। फिर शंकराचार्य ने राजा से कहा कि आप सभा करावें और उनसे मेरा शास्त्रार्थ हो और आप सुनें। छोड़फिर जो सत्य हो उसको मानना चाहिए। उसने स्वीकार किया और सभा भी कराई।

उसके अपने पास जैन मत के पण्डित थे और भी दूर-दूर से पण्डित जैन मत के बुलाए, फिर सभा हुई। उसमें यह प्रतिज्ञा हो गई कि हम वेद और वेद मत का स्थापन करेंगे और आपके मत का खण्डन तथा उन पण्डितों ने ऐसी प्रतिज्ञा की कि वेद और वेदमत का हम खण्डन करेंगे और अपने मत का मण्डन। सो उनका परस्पर शास्त्रार्थ होने लगा। उस शास्त्रार्थ में शंकराचार्य का विजय हुआ और जैन मत वाले पण्डितों का पराजय हो गया। फिर कोई युक्ति जैनों की नहीं चली, किन्तु शंकराचार्य ने कहा कि जैनों का आजकल बड़ा बल है और वेद मत का बल नहीं है। इससे शास्त्रार्थ तो हम करने को तैयार हैं, परन्तु शास्त्रार्थ ही न करें, तो हमारा कुछ बल नहीं। इसमें आप लोग प्रवृत्त होंवे कि कोई अन्याय करे, उसकी आप लोग शिक्षा करें।

सो राजा ने उस बात को स्वीकार किया कि वह हम करेंगे, परन्तु हमारे छः राजा सम्बन्धी हैं, उनके पास हम चिट्ठी लिखते हैं और आपको भी शास्त्रार्थ करने के हेतु भेजेंगे। फिर वह भी यदि मिल जायें तो बहुत अच्छी बात है। फिर शंकराचार्य उन राजाओं के पास गए और सभा हुई, फिर जैन मत के पण्डितों का पराजय हो गया। फिर वे छः भी सुधन्वा से मिले ओर सबकी सम्मति से संस्कार भी हुआ तथा वेदोक्त कर्म भी करने लगे। तब तो आर्यावर्तृत में सर्वत्र यह बात प्रसिद्ध हो गई कि एक शंकराचार्य नामक संन्यासी वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने वाले बड़े पण्डित हैं जिससे बहुत जैन लोगों के पण्डित परास्त हो गए। फिर उन सात राजाओं ने शंकराचार्य की रक्षा के हेतु बहुत भृत्य तथा सेवक और सवारी भी रख दी और सबने कहा कि आप सर्वत्र आर्यावर्तृत में भ्रमण करे और जैनों का खण्डन करें। इसमें यदि कोई अन्याय से जबर्दस्ती करेगा तो उसको हम लोग समझा लेवेंगे। फिर शंकराचार्य जी ने जहां-जहां जैनों के पण्डित और अत्यन्त प्रचार था, वहां वहां भ्रमण किया और उनसे सर्वत्र शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थें में सर्वत्र जैन लोगों का पराजय ही होता गया, क्योंकि दो तीन दोष उन (जैनियों) के बड़े भारी थे। एक तो ईश्वर को नहीं मानना, दूसरा वेदादिक सत्य शास्त्रों का खण्डन करना और तीसरा जगत् स्वभाव ही से होता है,इसका रचने वाला कोई नहीं, इत्यादि अन्य भी बहुत दोष हैं, उन दोषों को जैन मत के खण्डन मण्डन में विस्तार से (कहेंगे)। फिर जितनी जैनों के मन्दिर में मूर्तियां थी, उनको सुधन्वादिक राजाओं ने तोड वा डाली और कुवों में डलवा दी वा पृथिवी में गाड़ दी, सो आज तक जैनों की वे टूटी और बिना टूटी मूर्तियां पृथिवी खोदने से निकलती हैं। परन्तु मन्दिर नहीं तोड़े गए, क्योंकि शंकराचार्य और राजा लोगों ने विचार किया कि मन्दिरों को तोड़ना उचित नहीं है। इनमें वेदादिक शास्त्रों के पढ़ने के हेतु पाठशाला करेंगे, क्योंकि लाखों करोड़ों रूपये की इमारतें हैं, इसको तोड़ना उचित नहीं। और कुछ-कुछ गुप्त रूप से जैन लोग जहां-तहां रह गए थे सो आज तक देखने में आर्यावर्त देश में आते हैं। इसके बाद सर्वत्र वेदादि ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने की इच्छा बहुत मनुष्यों को हुई।

शंकराचार्य, सुधन्वादि राजा तथा और आर्यावर्तृतवासी श्रेष्ठ लोगों ने विचार किया कि विद्या का प्रचार अवश्य करना चाहिए। वह विचार ही करते रहे। इतने में ३२ वा ३३ बर्ष की उमर में दो जैन साधुओं ने कपट से विष दिया और शंकराचार्य का शरीर छूट गया। उनके मरने से सब लोगों का उत्साह भंग हो गया। यह भी आर्यावर्तृत देशवालों का बड़ा अभाग्य था,यदि शंकराचार्य दश वा बारह बरस भी और जीते तो विद्या का प्रचार यथावत् हो जाता। फिर आर्यावर्त की ऐसी दुर्दशा कभी नहीं होती, क्योंकि जैनों का खण्डन तो हो गया,परन्तु विद्या प्रचार यथावत् नहीं हुआ। इससे मनुष्यों को यथावत् कर्तव्य और अकर्तव्य का निश्चय नहीं होने से मन में सन्देह ही रहा। कुछ तो जैनों के मत का संस्कार हृदय में रहा और कुछ वेदादिक शास्त्रों का भी। यह बात इक्कीस याक्षबाइस सौ बरस पूर्व की है। इसके पीछे २०० वा ३०० वर्षों तक साधारण पढ़ना और पढ़ाना रहा।

फिर उज्जैन में विक्रमादित्य राजा कुछ अच्छा हुआ। उसने राजधर्म का कुछ-कुछ प्रकाश किया और बहुत कार्य न्याय से होने लगे थे। उसके राज्य में प्रजा को सुख भी मिला था, क्योंकि विक्रमादित्य तेजस्वी, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा धर्मात्मा था, इससे कोई और अन्याय नहीं करने पाता था। परन्तु वेदादिक विद्या का प्रचार उसके राज्य में भी यथावत् नहीं होता था। उसके पीछे ऐसा राजा नहीं हुआ, किन्तु साधारण होते रहे। फिर विक्रमादित्य से ५०० वर्ष के पीछे राजा भोज हुए। उसने संस्कृत का प्रचार किया, अतः नवीन ग्रन्थों की रचना और प्रचार किया था वेदादि ग्रन्थों का नहीं। परन्तु कुछ-कुछ संस्कृत का प्रचार राजा भोज ने ऐसा कराया था कि चाण्डाल और हल जोतने वाले भी कुछ-कुछ लिखना पढ़ना और संस्कृत भी बोलते थे। देखना चाहिए कि कालिदास गड़रिया था, परन्तु श्लोकादिक रच लेता था और राजा भोज भी नये-नये श्लोक रचने में कुशल था। कोई एक श्लोक भी रच के उनके पास ले जाता था, उसका प्रसन्नता से सत्कार करता था और जो कोई ग्रन्थ बनाता था तो उसका बड़ा भारी सत्कार करता था। फिर बहुत मनुष्य लोग लोभ से नए ग्रन्थ रचने लगे, उससे वेदादिक सनातन पुस्तकों की अप्रवृत्ति प्रायः हो गई। संजीवनी नाम का इतिहास विषयक ग्रन्थ राजा भोज ने बनाया, उसमें बहुत पण्डितों की सम्मति है। उसमें यह बात लिखी है कि तीन ब्राह्मण पण्डितों ने ब्रह्म वैवर्त्तादिक तीन पुराण रचे थे। उनसे राजा भोज ने कहा कि और के नाम से तुमको ग्रन्थ रचना उचित नहीं था। संजीवनी ग्रन्थ में महाभारत की बात लिखी है कि कितने हजार श्लोक बीस वर्ष के बीच में व्यास जी का नाम करके लोगों ने मिला दिए हैं। ऐसे ही महाभारत का पुस्तक बढ़ेगा तो एक ऊंट का भार हो जायगा। और यदि ऐसे ही लोग दूसरे (महर्षि व्यासआदि) के नाम से ग्रन्थ रचेंगे तो बहुत भ्रम लोगों को हो जायगा। अतः उस संजीवनी ग्रन्थ में राजा भोज ने अनेक प्रकार की बातें उनके समय में विद्यमान पुस्तकों के विषय में और देश के वर्तमान के विषय में तथ्य पूर्ण इतिहास सम्मत लेख लिखे हैं।

बटेश्वर के पास होलीपुरा एक गांव है, उसमें चौबे लोग रहते हैं, वह जानते हैं कि जिसके पास वह इतिहास विषयक वह संजीवनी ग्रन्थ है, परन्तु वह पण्डित लिखने वा देखने को किसी को नहीं देता, क्योंकि उसमें सत्य-सत्य बात लिखी है। उसके प्रसिद्ध होने से पण्डितों की आजीविका नष्ट हो जाती है। इस स्वार्थरूपी भय से वह पण्डित उस ग्रन्थ को प्रसिद्ध नहीं करता। ऐसे ही आर्यावर्त निवासी मनुष्यों की बुद्धि क्षुद्र हो गई है कि अच्छा पुस्तक वा कोई इतिहास, उसको छिपाते चले जाते हैं। यह इनकी बड़ी मूर्खता है क्योंकि अच्छी बात जो लोगों के उपकार की हो, उसको कभी न छिपाना चाहिए। फिर राजा भोज के पीछे कोई अच्छा राजा नहीं हुआ। उस समय में जैन लोगों ने जहां-तहां मूर्तियां मन्दिरों में प्रसिद्ध की और वे कुछ-कुछ प्रसिद्ध भी होने लगे, तब ब्राह्मणों ने विचार किया कि इन जैनों के मन्दिरों में नहीं जाना चाहिए, किन्तु ऐसी युक्ति रचें कि हम लोगों की आजीविका जिससे हो। फिर उन्होंने ऐसा प्रपंच रचा कि हमको स्वप्न आया है, उसमें महादेव, नारायण,पार्वती, लक्ष्मी, गणेश, हनुमान, राम, कृष्ण, नृसिंह ने स्वप्न में कहा है कि हमारी मूर्ति स्थापन करके पूजा करें तो पुत्र, धन, नैरोग्यादिक पदार्थों की प्राप्ति होगी। जिस-जिस पदार्थ की इच्छा करेगा, उस-उस पदार्थ की प्राप्ति उसको होगी। फिर बहुत मूर्खों ने मान लिया और मूर्ति स्थापन करने को कोई-कोई घनी पुरुष लगा। फिर पूजा और आजीविका भी उनकी होने लगी। एक की आजीविका देख के दूसरा भी ऐसा करने लगा। और किसी महाधूर्त ने ऐसा किया कि मूर्ति को जमीन में गाड़ के प्रातः काल उठ के कहा कि मुझ को स्वप्न हुआ है। फिर उनसे बहुत लोग पूछने लगे कि कैसा स्वप्न हुआ है, तब उसने उनसे कहा कि देव कहता है कि मैं जमीन में गड़ा हूं और दुःख पाता हूं, मुझ को निकाल के मन्दिर में स्थापन करें और तू ही पुजारी हो तो मैं सब काम सब मनुष्यों का सिद्ध करूंगा। फिर वे विद्याहीन मनुष्य उससे पूछते थे कि वह मूर्ति कहां है? जो तुम्हारा स्वप्न सत्य है तो तुम दिखलाओ। तब जहां उसने मूर्ति गाड़ी थी वहां सबको ले जाकर भूमि खोद कर वह मूर्ति निकाली। सबने देख के बड़ा आश्चर्य किया और सबने उससे कहा कि तू बड़ा भाग्यवान् है और तुझ पर देवता की बड़ी कृपा है। इएलिए हम लोग धन देते हैं, इस धन से मन्दिर बनाओ। इस मूर्ति का उसमें स्थापन करो। तुम इसके पुजारी बनो और हम लोग नित्य दर्शन करेंगे। तब तो उसने प्रसन्न होके वैसा ही किया और उसकी आजीविका भी अत्यन्त होने लगी। उसकी आजीविका को देख के अन्य पुरुष भी ऐसी धूर्तता करने लगे और विद्याहीन पुरुष उसकी मान्यता व प्रतिष्ठा करने लगे। फिर प्रायः मूर्ति पूजन आर्यावर्तृत में फैला।

महर्षि दयानन्द ने मूर्ति पूजा के भारत वा आर्यावर्तृत में प्रचलन का यह वृतान्त अपने विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्कारण में सन् १८७४ में प्रस्तुत किया था। सारा देश जिसमें सभी मूर्ति पूजक भी शामिल है, इन तथ्यों को नहीं जानता। सत्य को जानना व मानना तथा असत्य को छोड़ना व दूसरों से छुड़वाना ही मनुष्य जीवन का एक उद्देश्य है। इसी उद्देश्य से सत्यार्थ के प्रकाश के लिए महर्षि दयानन्द का यह उपदेश प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है कि पाठक इतिहास के इस भूले बिसरे पृष्ठ को जानकर लाभान्वित होंगे।

पृष्ठ.....६ का शेष

हो गया–

अब मैं अपने प्रिय आध्यात्मिक तपस्वियों एवं राष्ट्रनिर्माताओं में से एक महान, अप्रतिम, अतुलनीय स्वामी रामतीर्थ जी का जन्म सन् १८७३ की दीपावली के दिन पंजाब के गुजरावाला जिले मुरारीवाला ग्राम में हुआ था।

स्वामी रामतीर्थ जी हिन्दू धर्म के साथ-साथ भारतीयता, राष्ट्रीयता के वज्र उद्घोषक थे। धर्म, आध्यात्मिकता एवं राष्ट्रवादियों की ध्वजा उन्होंने भारत के साथ-साथ विदेशों में भी विशेष रूप से जापान में फहराई। स्वामी जी ने वेदान्त आध्यात्म एवं राष्ट्रभक्ति को अपने जीवन एवं आचरण ऐसा अगीकार कर लिया था कि तेज, ओज, तप उनकी धमनियों, शिराओं उनकी दृष्टि एवं मस्तक में समाहित हो चुका था कि उनके आगे पादरी हो पाखण्डी, हो जिज्ञासु सब नतमस्तक हो जाते थे। उद्दण्डवस्तुतः उनके जीवन के अनेक सन्दर्भ एवं दृष्टान्त अत्यंत प्रेरक है किन्तु उनमें से एक दृष्टांत की चर्चा करूँगी कि एम.ए. पास करने के बाद तीर्थराम (सन्यास लेने के पूर्व का नाम) से आचार्य ने पूछा कि अब क्या करोगे? वे अपने इस होनकार शिष्य के इन विचारों को सुनकर प्रभावित ही नहीं हत प्रभ भी रह गए-

''यदि कोई विचार है तो यही कि अपना सारा जीवन और हरके श्वांस प्रभु की सेवा में लगा हूँ तथा मानव मात्र की सेवा करता रहूँ। वे चाहते थे कि हमारे प्यारे भारत राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे में राष्ट्रप्रेम के भाव हो । मात्र ३३ वर्ष की अल्पायु में ही दीपावली के समय गहरे नंवर में फँस एवं जलसमाधि ले ली। किन्तु मेरा दृष्टि में इनका अंत भी किसी षड़यंत्र का ही शिकार हुआ होगा।

गोबर्द्धन पूजा–

महर्षि दयानन्द का एक महत्त्वपूर्ण लघु ग्रन्थ 'गोकरुणानिधि'

–डॉ. रामनाथ वेदालंकार

महर्षि दयानन्द रचित पुस्तकों में एक छोटी से पुस्तक 'गोकरुणानिधि' है। देखने में तो छोटी सी है, किन्तु महत्त्व में यह कम नहीं है। इसकी रचना स्वामी जी ने आगरा में की थी। पुस्तक के अन्त में स्वामी जी ने स्वयं लिखा है कि यह ग्रन्थ संवत् १९३७ फाल्गुन कृष्णा दशमी गुरुवार के दिन बन कर पूर्ण हुआ। यह १५ दिन में ही छप कर तैयार हो गया और शीघ्र ही बिक कर समाप्त हो गया। एक वर्ष के अन्दर ही इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करना पड़ा। स्वामी जी ने इसका अंग्रेजी अनुवाद भी करवाया था।

गोकरुणानिधि तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में गाय आदि पशुओं की रक्षा के विषय में समीक्षा लिखी गयी है। यह समीक्षा भी दो प्रकरणों में है। प्रथम प्ररण में गाय आदि पशुओं की रक्षा का महत्त्व बताया गया है। दूसरे प्रकरण में हिंसक और रक्षक का संवाद है, जिसमें मांसभक्षण के पक्ष में जो भी बातें कहीं जा सकती हैं, वे सब एक-एक करके हिंसक के मुख से कहला कर रक्षक द्वारा उन सबका उत्तर दिलाया गया है। इससे अन्त में यह परिणाम निकलता है कि मांसभक्षण सर्वथा अनुचित है। यह संवाद बड़ा ही रोचक और शिक्षाप्रद है। शिक्षणालयों में एक छात्र को हिंसक तथा दूसरे को रक्षक बना कर इसका अभिनय किया जा सकता है। हिंसक और रक्षक के संवाद के बाद मद्यपान तथा भांग आदि के सेवन के दोष बताये गये हैं, क्योंकि मांसभक्षण से मद्यपान तथा भांग आदि नशीले पदार्थों के सेवन की आदत भी पड़ जाती है। पुस्तक के दूसरे भाग में गोकृष्यादिरक्षिणी सभाओं के नियम लिखे हैं तथा तीसरे भाग में उपनियम हैं।

भूमिका में ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए महर्षि लिखते हैं- ''यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है, जिससे गौ आदि पशु जहां तक सामर्थ्य हो बचायें जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती के बढ़ने से सबको सुख बढ़ता है।''

गाय आदि पशुओं की रक्षा क्यों आवश्यक है यह समझाने के लिए महर्षि हिसाब लगाकर बताते हैं कि एक गाय की पीढ़ी रक्षा करने पर कितना लाभ पहुंचा सकती है, जबकि उसे काट कर उसका मांस खाने से उसकी तुलना में कुछ भी उपकार नहीं होता। वे लिखते हैं-

''जो एक गाय न्यून से न्यून दो सेर दूध देती हो और दूसरी बीस सेर, तो (औसत से) प्रत्येक गाय के ग्यारह सेर दूध होने में कोई शंका नहीं। इस हिसाब से एक मास में सवा आठ मन दूध होता है। एक गाय कम से कम ६ महीने और दूसरी अधिक से अधिक १८ महीने तक दूध देती है तो दोनों का मध्य भाग प्रत्येक गाय के दूध देने में १२ महीने होते हैं। इस हिसाब से १२ महीनों का दूध ९९ मन होता है।''

''इतने दूध को औटाकर प्रति सेर में छटांक चावल और डेढ़ छटांक चीनी डाल कर खीर बना खावे, तो प्रत्येक पुरुष के लिए दो सेर दूध की खीर पुष्कल होती है, क्योंकि यह भी एक मध्यमान की गिनती है, अर्थात् कोई दो सेर दूध की खीर से अधिक खाएगा और कोई न्यून। इस हिसाब से एक प्रसूता गाय के दूध से एक हजार नौ सौ अस्सी मनुष्य एक बार तृप्त होते हैं। गाय न्यून से न्यून ८ और अधिक से अधिक १८ बार ब्याहती है, इसका मध्यभाग १३ आया। तो पच्चीस हजार सात सौ चालीस मनुष्य एक गाय के जन्मभर के दूध मात्र से एक बार तृप्त हो सकते हैं।''

''इस गाय की एक पीढ़ी में छः बछिया और सात बछड़े हुए। इनमें से एक की मृत्यु रोगादि से होना सम्भव है, तो भी बारह रहे। उन छः बछियाओं के दूध मात्र से उक्त प्रकार एक लाख चौवन हजार चार सौ चालीस मनुष्यों का पालन हो सकता है। अब रहे छः बैल। उनमें एक जोड़ी से दोनों साख में दो सौ मन अन्न उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार तीन जोड़ी ६०० मन अन्न उत्पन्न कर सकती हैं। और उनके कार्य का मध्यभाग आठ वर्ष है। इस हिसाब से चार हजार आठ सौ मन अन्न उत्पन्न करने की शक्ति एक जन्म में तीनों जोड़ी की है।''

''४८०० मन अन्न से प्रत्येक मनुष्य का तीन पाव अन्न भोजन में गिने, तो दो लाख छप्पन हजार मनुष्यों का एक बार भोजन होता है। दूध और अन्न को मिला कर देखने से निश्चय है कि चार लाख दस हजार चार सौ चालीस मनुष्यों का पालन एक बार के भोजन से होता है। अब छः गाय की पीढ़ी पर-पीढ़ियों के हिसाब लगा कर देखा जावे तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है। और इसके मांस से अनुमान है कि केवल ८० मांसाहारी मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं। देखो, तुच्छ लाभ के लिए लाखों प्राणियों को मार असंख्य मनुष्यों की हानि करना महापाप क्यों नहीं?''

इस प्रकार बकरी के लिए भी हिसाब लगा कर दिखाया है परन्तु महर्षि केवल गाय और बकरियों की ही रक्षार्थ सचेष्ट नहीं थे, प्रत्युत सभी उपयोगी पशुओं की रक्षा आवश्यक समझते थे, और किसी भी पशु का मांस खाने के सर्वथा विरुद्ध थे।

गाय आदि पशुओं की रक्षा के लिए महर्षि दयानन्द की आतुरता उनकी निम्नलिखित पंक्तियों से प्रकट हो रही है- ''गौआदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का ही नाश होता है क्योंकि जब पशु न्यून होते हैं, तब दूध आदि पदार्थ और खेती आदि कार्यों की घटती होती है। देखो, इसी से जितने मूल्य से जितना दूध और घी आदि पदार्थ तथा बैल आदि पशु सात सौ वर्ष पूर्व मिलते थे, उतना घी दूध और बैल आदि पशु इस समय दशगुणे मूल्य से भी नहीं मिल सकते।''

''हे मांसाहारियों! तुम लोगों को जब कुछ काल पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे या नहीं? हे परमेश्वर तू क्यों इन पशुओं पर जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है? क्या इसके लिए तेरी न्यायसभा बन्द हो गई है?''

दयामय दयानन्द ने गाय आदि पशुओं की हत्या रुकवाने के लिए देशव्यापी हस्ताक्षर-अभियान चलाया था। उनका प्रयत्न था कि गौ हत्या रोकने विषयक प्रार्थनापत्र पर दो करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर करवा कर ब्रिटिशसम्राज्ञी विक्टोरिया को वह प्रार्थनापत्र भेजा जाए। इसके लिए उन्होंने राजा से रंक तक सभी को प्रेरित किया था। इस प्रार्थनापत्र पर उदयपुर के महाराजा श्री सज्जन सिंह, जोधपुर के महाराजा यशबन्तसिंह, शाहपुराधीश, नाहरसिंह, महाराजा बूंदी आदि ने भी हस्ताक्षर किये थे तथा अपनी प्रजा से भी कराये थे। महर्षि के असामयिक देहावसान के कारण यह कार्य बीच में ही रुक गया।

स्वामी दयानन्द गोकृष्यादिरक्षिणी सभा की स्थापना करना चाहते थे। इसे वे विश्वव्यापी बनाना चाहते थे। सब विश्व को विविध सुख पहुंचाना इस सभा का मुख्य उद्देश्य नियमों में वर्णित किया गया है तथा लिखा है कि जो मनुष्य इस परमहितकारी कार्य में तन-मन-धन से प्रयास और सहायता करेगा, वह इस सभा के प्रतिष्ठायोग्य होगा। यह भी लिखा है कि क्योंकि यह कार्य सर्वहितकारी है, इसलिए यह सभा भूगोलस्थ मनुष्यजाति से सहायता की पूरी आशा रखती है। जो सभा देशदेशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में परोपकार ही करना अभीष्ट रखती है, वह सभा की सहकारिणी समझी जायेगी। महर्षि के १२ जनवरी सन् १८८२ ईद्व के पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने आगरा में एक ''गो-रक्षिणी सभा'' स्थापित की थी और उसके नियमोपनियम भी बनाये थे। सम्भवतः वे ही नियमोपनियम गोकरुणानिधि में उन्होंने छपवाये होंगे।

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा के नियमों में लिखा है कि जो सभा के उद्देश्य के अनुकूल आचरण करने को उद्यत हो तथा जिसकी आयु १८ वर्ष से न्यून न हो वह इस सभा में प्रविष्ट हो सकता है। जो इस सभा में सदाचारपूर्वक एक वर्ष रह चुका हो और अपनी आय का शतांश या अधिक देता रहा हो, वह 'गौ रक्षक सभासद्' हो जायेगा और उसे सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो जायेगा। वर्ष भर सभा में रहने के नियम को विशेष परिस्थितियों में अन्तरंग सभा शिथिल भी कर सकती है। राजा, सरदार, बड़े-बड़े साहूकार आदि को सभा के सभासद् बनने के लिए शतांश देना आवश्यक नहीं होगा। वे एक बार या मासिक या वार्षिक अपने उत्साह वा सामर्थ्य के अनुसार देकर सभासद् बन सकते हैं। अन्तरंग सभा किसी विशेष हेतु से चन्दा न देने वाले को भी गौ रक्षक सभासद् बना सकती है।

उपनियमों में अंकित है कि सभा के समस्त कार्यप्रबन्ध के लिए एक अन्तरंग सभा नियत की जायेगी और उसके तीन प्रकार के सभासद होंगे एक प्रतिनिधि दूसरे प्रतिष्ठित और तीसरे अधिकारी। प्रत्येक दो सप्ताह बाद अन्तरंग सभा अवश्य हुआ करेगी और मन्त्री तथा प्रधान भी आज्ञा से या जब अन्तरंग सभा के पांच सदस्य मन्त्री को पत्र लिखें तब भी हो सकती है।

गोकृष्यादिरक्षिणी सभा का कार्य क्या होगा एतदर्थ लिखा है कि संप्रति इस सभा के धन का व्यय गौ आदि पशु लेने, उनका पालन करने, जंगल और घास के क्रय करने, उनकी रक्षा के लिए भृत्य वह अधिकारी रखने, तालाब, कूप, बावड़ी अथवा बाड़ा बनाने के निमित्त किया जायेगा। पुनः अत्युन्नत होने पर सर्वहित कार्य में भी व्यय किया जा सकेगा। यह भी निर्देश है कि इस सभा के जो पशु प्रसूत होंगे, उनका दूध एक मास तक उनके बछड़े को पिलाना चाहिए और अधिक होने पर उसी पशु को अन्न के साथ खिला देना चाहिए। दूसरे मास से तीन स्तनों का दूध बछड़े को देना चाहिए और एक स्तन का स्वयं लेना चाहिए। तीसरे मास के आरम्भ से आधा दूध लेना और आधा बछड़े को तब तक देते रहना चाहिए जब तक गाय दूध देती है। सभा जब किसी को स्वरक्षित पशु देवें, तब यह व्यवस्था कर ले कि जब वह पशु असमर्थ हो जायेगा, उसके काम का न रहेगा, तब वह पुनः उसे सभा के अधीन कर देगा।

स्वामी दयानन्द का अभिप्राय था कि गाय-बैलों की रक्षा होगी तो घी-दूध, अन्न प्रचुर मात्रा में मिलेगा, कृषि उन्नत होगी, देशवासी बलवान् तथा बुद्धिमान बनेंगे और इस प्रकार प्रत्येक देश के समुन्नत होने पर यह धरती गरिमामयी बन सकेगी।

ग्रन्थ को समाप्त करते हुए महर्षि ने एक बड़ा ही मार्मिक श्लोक लिखा है-

धेनुः परा दया पूर्वा यस्यानन्दाद् विराजते।
आख्यायां निर्मितस्तेन ग्रन्थो गोकरुणानिधिः।।

अर्थात् जिसके नाम में आनन्द शब्द के बाद 'धेनु' विराजमान है और आनन्द शब्द से पूर्व 'दया' है, उस 'दयानन्द सरस्वती' ने यह गोकरुणानिधि नामक ग्रन्थ निर्मित किया है। सरस्वती के अनेक अर्थों में एक अर्थ धेनु (गाय) भी होता है, इस दृष्टि से आनन्द शब्द के बाद धेनु का होना लिखा है। इससे यह सूचित होता है कि मेरे नाम का ही यह अर्थ है कि 'धेनुओं पर करुणा करके आनन्द मानने वाला' अतः मेरा 'गोकरुणानिधि' ग्रन्थ लिखना स्वाभाविक ही है।

गो-रक्षा और पशु-रक्षा का प्रश्न जैसा महर्षि दयानन्द सरस्वती के समय था, वैसा ही आज भी है और उनके द्वारा किये गये गौ आदि पशुओं की रक्षा के प्रयास आज हमें भी अपने कर्तृतव्य का बोध करा रहे हैं।

महर्षि की दूरदर्शिता

१८७५ में मुम्बई में जब कई उत्साही सज्जनों ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के समक्ष नया 'समाज' स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, तब उस दीर्घद्रष्टा ऋषि ने अपनी स्थिति को स्पष्ट करते हुए और उन लोगों को सावधान करते हुए कहा-

भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है । मैं तो वेद के अधीन हूँ और हमारे भारत में पच्चीस कोटि (उस समय की भारत की जनसंख्या) आर्य हैं । कई-कई बात में किसी-किसी में कुछ-कुछ भेद है, सो विचार करने से आप ही आप छूट जाएगा ।

मैं संन्यासी हूं और मेरा कर्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हूँ, इसके बदले जो सत्य समझता हूँ, उसका निर्भयता से उपदेश करता हूँ । मैं कुछ कीर्ति का रागी नही हूँ ।चाहे कोई मेरी स्तुति करे या निन्दा करे, मैं अपना कर्तव्य समझ के धर्म-बोध कराता हूँ । कोई चाहे माने वा न माने, इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है ।...आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, तो समाज स्थापित कर लो । इसमें मेरी कोई मनाई नहीं है । परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गड़बड़ाध्याय हो जाएगा ।

मैं तो जैसा अन्य को उपदेश देता हूं, वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष्य में रखना कि मेरा कोई स्वतन्त्र मत नहीं है और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हूं । इससे यदि कोई मेरी गलती आगे पाई जाए तो युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसी को भी सुधार लेना । यदि ऐसा न करोगे तो आगे यह भी एक 'मत' (सम्प्रदाय) हो जाएगा और इसी प्रकार से 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर-भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़कर नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है, इसमें यह भी एक मत बढ़ेगा ।

मेरा अभिप्राय तो है कि इस भारतवर्ष में नाना मतमतान्तर प्रचलित हैं, तो भी वे सब वेदों को मानते हैं । इससे वेदशास्त्र रूपी समुद्र में यह सब नदी-नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी और धर्म ऐक्यता से सांसारिक और व्यावहारिक सुधारणा होगी और इससे कला-कौशल आदि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्य मात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थ, काम और मोक्ष मिल सकता है ।

साभार-आर्ष दृष्टि

जिस मौत से दुनिया प्यार करे

-पं० चमूपति

रात्रि तीन बजे आप अजमेर पहुँच गये। प्रकृति डाँवाँडोल रही। २४ अक्तूबर को पूछने पर कहा- -''प्रकृति अब अच्छी है।'' ठाकुर भोपाल सिंह जी अलीगढ़ वालों ने जिस श्रद्धा भक्ति से ऋषि की सेवा की उसे शब्दों में कौन बता सकता है ? ऋषि ने मसूदा जाने का पहले वचन दे रखा था। २८ अक्तूबर को कहा- ''हमें मसूदा ले चलो।'' लाहौर से लाला जीवनदास व पं. गुरुदत्त भी पहुँच गये। ३० अक्तूबर दिन मंगलवार दीपमाला पर्व पर सायंकाल समय प्रार्थना-उपासना करते हुए कहा- ''प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो'' कहकर नश्वर देह का परित्याग कर गये।

गुरुदत्त यह दृश्य देखकर बदल गये। न प्रश्नोत्तर हुआ, न शंका समाधान और न ही आपने ऋषि का कभी उपदेश ही सुना। बस आँखों से आँख मिलाई। प्रथम बार और अन्तिम बार आपने ऋषि दर्शन किया।

मन और मस्तिष्क में संशय के, नास्तिकता के जो भाव भरे थे सब एकदम विनष्ट हो गये। अब गुरुदत्त पक्का व सच्चा आस्तिक बनकर लाहौर लौटा। 'लिखने को तो बहुत कुछ है, परन्तु पुस्तक के आकार को ध्यान में रखकर लेखक विवश है। भक्तराज अमींचन्द के पद्य को उद्धृत करते हुए महर्षि के देह त्याग - अमर बलिदान की घटना का चित्र-चित्रण करके इस विषय में लेखनी को विराम देते हैं-

परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द, पधारा है परलोक डंके बजाता।

१६ नवम्बर १८६९ को काशी शास्त्रार्थ भी मंगलवार सायं समय ही हुआ था और आज अजमेर में भी मंगलवार सायं समय महर्षि बलिदान पथ के पथिक बनकर अमर पद को प्राप्त कर गये।

'शंकर' दिया बुझाय दिवाली को देह का कैवल्य के विशाल बदन में समा गया।

महर्षि परलोक गमन की मुख्य-मुख्य घटनाएँ देकर इनके आध्यात्मिक व ऐतिहासिक महत्त्व पर यहाँ कुछ विशेष विचार करने की आवश्यकता है। पाठकवृन्द! महर्षि के देह-त्याग से पूर्व की यह सब घटनाएँ तथा ऋषिवर के कहे शब्द अपने आप में एक बहुत बड़ा उपदेश हैं। ऋषि जी 'आर्याभिविनय' में 'विनय' संख्या ४५ में लिखते हैं-''तव, प्रणीतिषु'' आपकी आज्ञा का 'प्रणय'- इसे अंग्रेजी में Wedded To Thy Divine Will कहा जाएगा। शब्दों व अक्षरों में व्यक्त की गई विनय को अन्तिम- वेला में आश्चर्यचकित करते हुए आचरण में अनूदित कर दिखाया, जब यह कहा -''प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।'' ऋषि का यह वाक्य अध्यात्म जगत् में व्याप्त हो गया। भक्त, सन्त, हिन्दू, सिख, मुसलमान भारत भर में प्रवचनों में कहा करते हैं-

''राजी हैं हम उसी में जिसमें रजा है तेरी''

ऋषि के महाप्रयाण के पश्चात् ही किसी मुस्लिम कवि ने ऋषि के उपर्युक्त वचन का यह पद्यानुवाद कर दिया। "एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है'' और स्वयं को 'ईश्वरेच्छा' में बताया। क्या इनका मर्म आस्तिक जन जानने का प्रयास करेंगे ?' कुछ कुछ तेज व अंधकार का भाव है'' ये शब्द वेद के प्रसिद्ध मन्त्र 'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्' का सरल अनुवाद ही तो था । परम पुरुष परमेश्वर का प्यारा मोक्ष-मार्ग पर चलते-चलते अपने लक्ष्य तक पहुँच गया। उसी घड़ी गद्गद् होकर क्षौर करवाया। नाई को चार पैसे की बजाय पाँच रुपये दिलवाये। मुख से 'हाय' का शब्द एक बार भी न निकला। प्रकाश जी ने लिखा है- जब कि बुझने लगा शहर अजमेर में, देह दीपक दयानन्द ऋषि राज का। तेरी इच्छा हो पूर्ण हे प्यारे प्रभु, बोलकर वाक्य यह मुस्कराने लगे।

भक्तराज पंद्म चमूपति भाव-भरित हृदय से लिखते हैं-

औरों के लिए मरने वाले, मरकर भी हमेशा जीते हैं
जिस मौत से दुनिया प्यार करे उस मौत की अजमत क्या होगी?

मृत्यु के समय शोक और मोह बड़ों-बड़ों को परास्त कर देता है। महर्षि ने मोह व शोक दोनों पर पूर्ण विजय प्राप्त की। अन्त समय स्वामी आत्मानन्द जी से कहों यह देह है इसका अच्छा क्या होगा ? ''फिर शिष्य से कहा-आनन्द से रहना।'' संन्यासी गोपालगिरि जी से। भी तब यही शब्द कहे । अन्त समय की एक-एक घटना पर मनन चिन्तन करके ही हम ऋषिवर के व्यक्तित्व की महिमा को समझ सकते हैं। महात्माओं के जप, तप, सेवा, संयम की सफलता की कसौटी मृत्यु का समय ही होता है। महर्षि उस पर खरे उतरे, यह इतिहास की साक्षी है। आप उस युग के बड़े-बड़े व्यक्तियों की मृत्यु के दृश्य पर भी विचार कीजिये। हजरत ईसा महान् थे, परन्तु उनको ईश्वर से बहुत शिकायत थी कि आकाशस्थ प्रभु उन्हें छोड़ गया। आजन्म ब्रह्मचारी योगेश्वर दयानन्द कहते हैं- प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो, पूर्ण हो, पूर्ण हो।''

दीपमालिका की शुभ निशि में। घर घर अनुपम आभा आई।
इच्छा पूर्ण होय प्रियतम की। रोम रोम ऋषि तनु हर्षाई।
कर दीपक उत्सुक शरीर को। जगमग जगमग ज्योति जगाई -

भारत एक कथा प्रधान देश है

-आचार्य दार्शनेय लोकेश

कुछ विद्वान इस बात को बड़े उत्साह पूर्वक प्रचारित कर रहे हैं कि दीपावली का त्यौहार रावण हनन तथा लंका विजय बाद श्री राम के अयोध्या लौटने की खुशी में ''दीप प्रज्वलित'' करके मनाया गया। हर्ष है कि आज दीपावली का त्यौहार है। इस पर प्रस्तुत है-एक लघु विवेचना।

श्री राम का राज्याभिषेक वसन्त ऋतु के चैत्र शुक्ल पक्ष में निर्धारित किया गया था। राज्याभिषेक तो हुवा नहीं, अगले दिन से बनवास अवश्य हो गया। स्वाभाविक है कि बनवास के रूप में परिवर्तित यह कार्यक्रम चैत्र शुक्ल से ही जुड़ा हुआ है।

चैत्रःश्रीमानय मासःपुण्य पुष्पितकाननः।
यौव राज्याय रामस्य सर्व मेवोयकल्प्यताम्।।

अर्थात-जिसमें वन पुष्पित हो गये। ऐसी शोभा कान्ति से युक्त यह पवित्र चैत्र मास है। रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक पुष्य नक्षत्र चैत्र शुक्ल पक्ष में करने का विचार निश्चित किया गया है।

महाराज भरत के आग्रह पर श्रीराम ने उन्हें वचन दिया था कि वह १४ वर्ष पूरे होने पर १ दिन भी विलम्ब नहीं होंगे और साथ ही अयोध्या आने के लिए भरत ने भी प्रतिज्ञा की थी कि यदि श्री राम ठीक १४ वर्ष समाप्ति पर किंचित भी विलम्बित पहुंचेंगे तो भरत को जीवित नहीं पा सकेंगे।

चैत्र की जगह अन्यथा किसी मास में वापसी पर श्रीराम का वचन भंग तो होता ही उनको भरत जी महाराज भी जीवित मिलते क्या? १४ वर्षों का प्रतिबन्ध चैत्र मास में ही पूरा होता है, आश्विन या कार्तिक में नहीं।

महानुभावो! आप सभी से मेरा कहना है कि ऐसी स्थिति में श्री राम का वनवास से लौटना चैत्र से हटकर अश्विन कार्तिक आदि अन्य किसी भी मास में होना असम्भव था। रघुकुल में वचनबद्धता (प्राण जाए पर वचन न जाई) की प्रतिबद्धता विख्यात है।

यह कहना कि आश्विन मासान्त (मुख्यमान से आश्विन अमावस्या या कृष्णादिमान गौणमान की कार्तिक अमावस्या) में श्री राम के अयोध्या प्रत्यावर्तन पर खुशियों के मनाए जाने के प्रतीक में दीपावली का उत्सव हुआ हो, एक कोरा असत्य और अशास्त्रीय कथन लगता है। मुख्यमान अर्थात शुक्ल पक्ष से चान्द्रमास शुरू करना, गौणमान अर्थात कृष्ण पक्ष से चान्द्रमास शुरू करना। दीपावली तो एक विशुद्ध ऋतुपरक शारदीय नवशस्येष्टि का उत्सव है। देखें (श्री मोहन कृति आर्ष पत्रकम्-संवत् -२०७८) भारत के एकमात्र वैदिक पंचाङ्ग का पृष्ठ ७५।

सिद्धान्त स्तर पर इसके सिवाय किसी अन्य दिन के लिए कोई और आधार या कारण इस त्यौहार का नहीं है। बाकी तो कथा कहानी प्रधान इस देश में जो कहानी न चल पड़े वही कम है। आप सब मनीषियों के लिए क्या कहना, एक नहीं समाज में प्रथा से कुप्रथाओं तक का रूप ले चुके बहुत से त्यौहार ऐसे हैं जो केवल कथा कहानियों के बल पर जन्मे और प्रचलित हैं।

''कैसा वह मानव महान था''

-प्रताप कुमार साधक

ज्ञान प्रभाकर अस्त हो गया, रजनी का साम्राज्य हो गया।
इसी अमावस के आँचल में प्यारा स्वामी हाय! खो गया ।।
सोता विश्व जगाने वाला माँ का सच्चा लाल सो गया।
धरती सिसकी नभ थर्राया, सारा सभ्य समाज रो गया ।।
कार्तिक की वह रात अँधेरी, घोर भयंकर कैसी काली ।
मिट्टी के कुछ दीप जलाकर मना रहे थे जब दीवाली ।।
नीचों के कुत्सित कृत्यों से तभी बुझ गया अंशुमाली ।
छिपा कलाधर भी लज्जित हो, दिनकर ने खो दी थी लाली।।
पापी पाचक की तृष्णा से वह दुष्कर्म महान हो गया।
पल भर में ही आह! अचानक कैसा विषम विधान हो गया ।।
ऋषियों के पावन भूतल पर कैसा कुत्सित काम हो गया।
युगों युगों तक जिसके कारण यह मानव बदनाम हो गया ।।
लोभी! तुझको लाज न आई स्वामी को विषपान कराते ।
कुल-कलंक! निर्जज्ज !! उन्हीं से धन लेने निजहाथ बढ़ाते ।।
ब्रह्मचर्य में भीष्म, त्याग में बुद्ध और शंकर समान था ।
योगी और तपस्वी जिसको वेद-शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था ।।
दया, क्षमा, आनन्द प्रदाता, धैर्यवान, अति ज्ञानवान था।
''साधक'' सत्य मार्ग दिग्दर्शक, कैसा वह मानव महान था ।।

पंजी०सं० आर.एन.आई.-२२४१/५७ -आर्यमित्र ०६ एवं १६ नवम्बर, २०२३ पोस्टल रजि.जी.पी.ओ. लखनऊ/एन.पी.-१४/२०१६-२१ एक प्रति ₹ ५.००

आर्य मित्र

नारायण स्वामी भवन, ५-मीराबाई मार्ग, लखनऊ दूर./फैक्सः ०५२२-२२८६३२८
प्रधान-०६४१२६७८५७१, मंत्री-०६४१५३६५५७६, सम्पादक-६४५१८८१६७७
ई.मेल-apsabhaup86@gmail.com

सेवा में,

.....

.....

.....

सन्देश

आर्य मित्र साप्ताहिक को मैं ऋषि बलिदान विशेषांक के आयोजन के लिए शुभकामनाएं देता हूँ। यह हर्ष का अवसर है कि पुनर्जागरण के पुरोधा, समग्र क्रांति के अग्रदूत और महान समाज सुधारक महर्षि दयानंद सरस्वती के २००वें बलिदान दिवस पर उनके आदर्शों को आत्मसात करने के लिए इस पत्र का यह विशेषांक निकल रहा है।

महर्षि दयानंद सरस्वती ने अखिल भारतीय अपने प्रवचनों और सत्यार्थ प्रकाश के माध्यम से गलत धारणाओं को उखाड़ फेंका। जो लोग भारत के धार्मिक ग्रन्थों का मजाक उड़ाते थे, उन सब लोगों को इन ग्रंथों के माध्यम से महर्षि ने मुँह तोड़ जवाब दिया। १८७५ में महर्षि दयानंद सरस्वती ने मुंबई में प्रथम आर्यसमाज स्थापित किया, जिसके उपरांत देश विदेश में हजारों आर्यसमाज खोले गए , जिनके माध्यम से धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को मिटाने की मुहीम चलायी गई। भारत के ८० प्रतिशत क्रांतिकारी परोक्ष या अपरोक्ष रूप से आर्य समाज से प्रेरित और प्रभावित हुए।

समाज में अभी भी धार्मिक अंधविश्वास, जातिवाद, वर्गभेद आदि अनेक विकृतियां विद्यमान् हैं। ''वेदों की ओर लौटो'' का महर्षि का उद्घोष आज भी हमें अपनी प्राचीन संस्कृति से जुड़ने के लिए आह्वान करता है। राष्ट्र के विघटन के लिए पैदा किए जाने वाले कारणों को हतोत्साहित करने के लिए और संवैधानिक रूप से संघर्ष करने की प्रेरणा महर्षि दयानंद सरस्वती के प्रवचनों से मिलती है।

मैं, उन महान सुधारक को जो केवल सामाजिक क्रान्ति ही नहीं बल्कि समग्र क्रान्ति के अग्रदूत थे, उनके यशस्वी तेजस्वी अमृत स्वरूप को हृदय से नमन करता हूँ। इस पत्र के माध्यम से महर्षि दयानंद सरस्वती के विचारों पर पाठक मंथन करेंगे और यह पत्र आने वाली पीढ़ी को सही दिशा देने के लिए मार्गदर्शन देंगी । ऐसा मुझे विश्वास है।

पंकज जायसवाल
मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र., लखनऊ

सन्देश

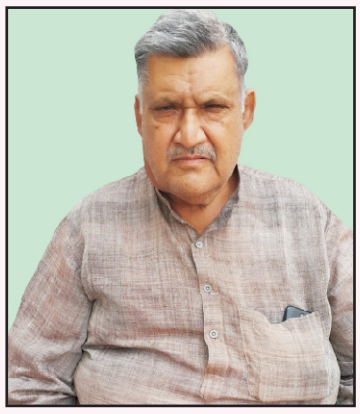

महर्षि दयानन्द सरस्वती के 140वें महा पारायण दिवस को हम सभी आर्य जन प्रेरणा दिवस के रूप में मनाने का संकल्प लेकर, आज की घातक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ऋषि के विचारों का ज्यादा से ज्यादा प्रचार करें। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

अरविन्द कुमार
कोषाध्यक्ष
आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र.

शोक सन्देश

आर्य मित्र साप्ताहिक के प्रबन्ध सम्पादक आर्य शिव शंकर वैश्य के बहनोई श्री मनमोहन प्रसाद वैश्य का लगभग ७२ वर्ष की आयु में लम्बी बीमारी के पश्चात् दिनांक ०४ नवम्बर, २०२३ को श्री राममनोहर लोहिया अस्पताल, गोमती नगर, लखनऊ में देहान्त हो गया।

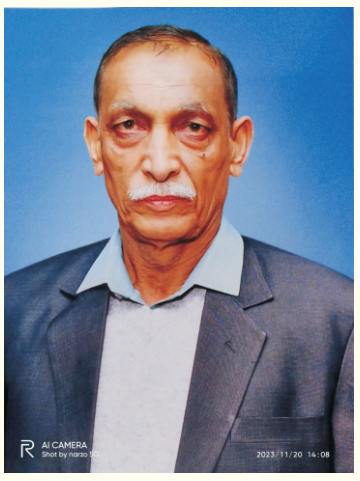

स्व. मनमोहन प्रसाद का अन्तिम संस्कार दिनांक ५ नवम्बर, २०२३ गोपाल घाट शमशान भूमि सीतापुर में पूर्ण वैदिक विधि से पं० शचीन्द्र मिश्र द्वारा कराया गया। अंत्येष्ठि संस्कार में चौधरी रणवीर सिंह, उप प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र., गोपी कृष्ण आर्य मंत्री आर्य समाज सीतापुर, दिनेश दिलवानी एवं कई सगे सम्बन्धी मित्रगण तथा मा. राकेश राठौर-उप मंत्री उ.प्र. शासन आदि उपस्थित थे।

स्व. मनमोहन प्रसाद जनपद सीतापुर के प्रमुख व्यवसायी व गणमान्य व्यक्ति थे। वह अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गये।

दिनांक ८ नवम्बर, २०२३ को शान्ति यज्ञ एवं श्रद्धांजलि सभा का आयोजन उनके निज निवास तामसेनगंज, सीतापुर में किया गया। जिसमें अनेक इष्ट मित्र व सगे सम्बन्धियों ने श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

चौ. रणवीर सिंह जी ने अपने भावभीने श्रद्धा शब्द अर्पित करते हुए कहा कि ईश्वरीय नियम अटल हैं, उसकी व्यवस्था अपरिवर्तनीय है। स्व. मनमोहन प्रसाद भले ही भौतिक रूप से हम लोगों के बीच नहीं हैं लेकिन उनकी यश रूपी कीर्ति सदैव हम लोगों के हृदय में बनी रहेगी। अंत में सभी आगन्तुकों को धन्यवाद उनकी धर्म पत्नी श्रीमती उमा वैश्य ने दिया।

आर्य प्रतिनिधि सभा उ.प्र. के प्रधान श्री देवेन्द्रपाल वर्मा व अन्य सभी पदाधिकारियों व सभा कार्यालय कर्मचारियों ने अपनी शोक संवेदनाएँ व्यक्त करते हुए दिवंगत आत्मा की सद्गति तथा परिजनों को यह असहनीय दुःख सहन करने की परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की है।

दीपावली है दीपों का प्रकाश

-डा श्वेत केतु शर्मा

(१)
दीपावली है दीपों का प्रकाश
अंधकार से प्रकाश का उत्सव,
बुराईयों पर अच्छाईयों की विजय।
अज्ञान पर ज्ञान की चमक,
निराशा पर आशा की जीत।
प्रकाशित दीपों की ज्योति से,
मिटता अहंकार ईर्षा द्वेष का अंधेरा।
दीपावली है दीपों का प्रकाश !१!

(२)
दीपावली देती मानवता का संदेश,
दुर्गुण दुर्व्यसन का करती संहार।
प्रेम अपनत्व आत्मीयता केभाव,
प्रज्जवलित कर जीवन्त करती ।
प्रकाशित करती अन्तर्भाव की ज्वाला,
हृदय पुष्प गुच्छ में स्नेह प्रवाह देती।
मानवीय मूल्यों से प्रकाश्य दीपों से,
प्रफुल्ल मन को आलोकित करती।
दीपावली है दीपों का प्रकाश !२!

(३)
राम की मर्यादा लक्ष्मण भातृभाव,
सीता का आदर्श भरत का समर्पण।
वाल्मीकि का दर्शन तुलसी का मानस,
हनुमान की भक्ति क्षत्रुधन का वात्सल्य।
प्रेम निष्ठा परोपकार देशभक्ति कर्तव्य से,
ओत-प्रोत होती जगमगाती दीपावली।
अन्धकार से प्रकाश पर विजय का,
दीपावली है दीपों का प्रकाश।३ !

(४)
दीपावली है दयानंद की दया का सागर,
अन्धविश्वास कुरीतियों को दूर करती।
मानव को मानव बनाने का है दिवस,
वेदों के ज्ञान को आत्मसात करने का दिन।
संस्कार-संस्कृति से प्रकाशित होते होते,
जीवन को श्रैष्ठ विचारों में पिरोने का दिवस।
दीप की ज्योति से सत्य के प्रकाश से,
दीपावली है दीपों का प्रकाश। ४ !

(५)
दीप की जगमगाहट में सारा संसार हो प्रकाशित,
वैदिक विचारों से कलुषित भावों का हो संघार
मानव को मानव बनने बनाने का मिलता है संदेश ।
देश राष्ट्र समाज परिवार को एकसूत्र में बांधती
दीपावली के दीप जलें प्रेम-भाव के दीपजले। ५!
दीपावली पर अनंत शुभकामनाएं व बधाईयों के साथ...

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।
वेद का पढ़ना-पढ़ाना और
सुनना-सुनाना
सब आर्यों का परम धर्म है।।
-महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी-आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश सम्पादक-पंकज जायसवाल भगवानदीन आर्य भाष्कर प्रेस,
5-मीराबाई मार्ग, लखनऊ के लिए अस्थायी रूप में शुभम् आफ्सेट प्रिंटर्स, कैसरबाग, लखनऊ से मुद्रित एवं प्रकाशित
लेखों में वर्णित भाषा या भाव से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है-सम्पूर्ण विवादों का न्याय क्षेत्र लखनऊ न्यायालय होगा।